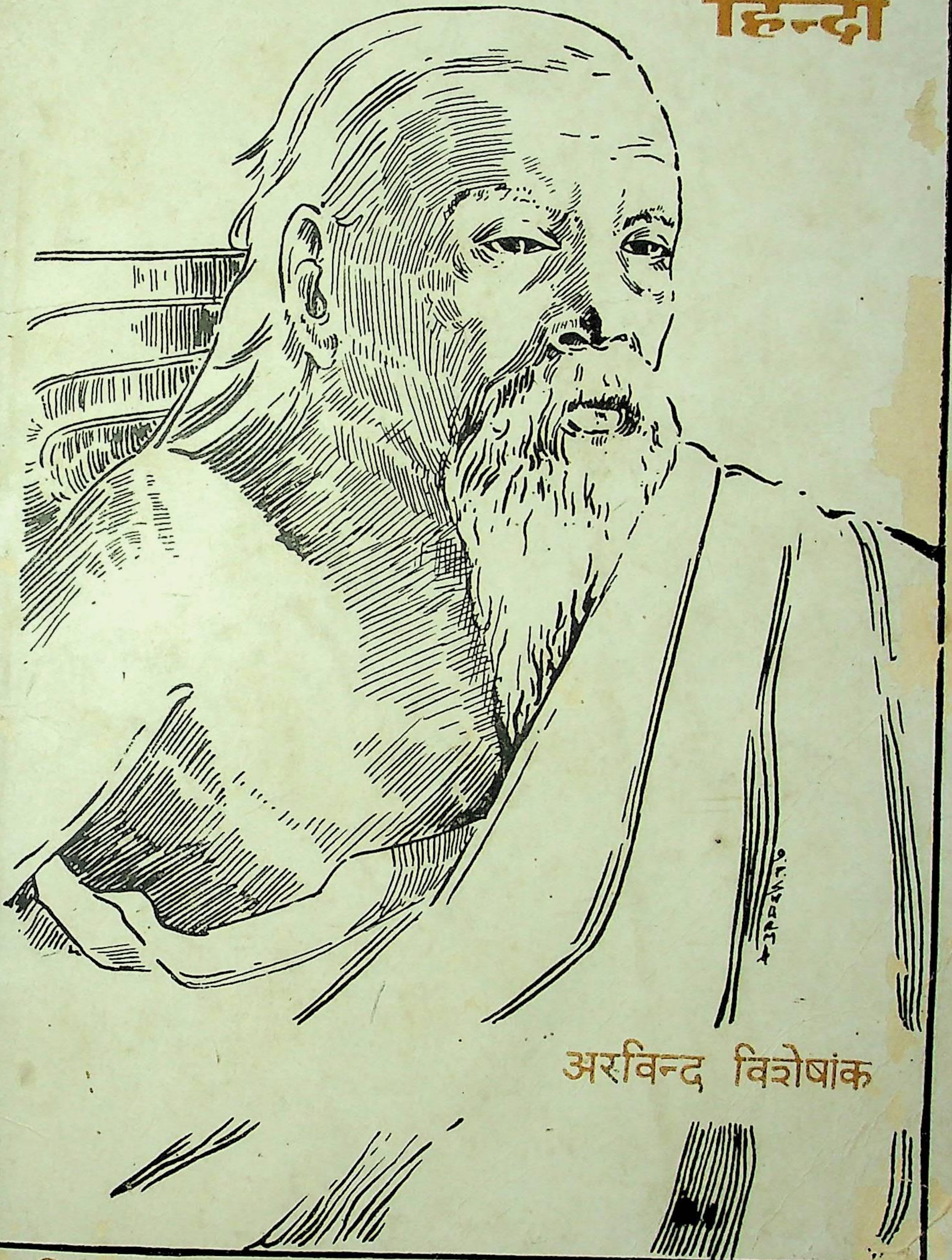
शीराज़ा

हिन्दी



अरविन्द विशेषांक

ललित कला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू

मार्च १९७४

शीराज़ा

हिन्दी

प्रमुख सम्पादक :
मुहम्मद यूसुफ टेंग

सम्पादक :
रमेश मेहता

ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू - कश्मीर, जम्मू

वार्षिक शुल्क : आठ रुपये | एक प्रति : दो रुपये

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार :

रमेश मेहता

सम्पादक

शीराज़ा हिन्दी

ललितकला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर,

नहर मार्ग, जम्मू

फोन : ५०४०

सचिव द्वारा जम्मू व कश्मीर ललितकला, संस्कृति तथा
साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर के लिए प्रकाशित
तथा डोगरा प्रिंटिंग प्रेस, कच्ची छावनी, जम्मू में मुद्रित ।

वर्ष : नौ ; अंक : चार | मार्च १९७४

शीराज़ा हिन्दी

वर्ष : 9] मार्च 1974 [अंक : 4

अनुक्रमणिका

कविताएं–

कहानी–

स्थाई स्तम्भ–

अपनी बात

आरम्भ से ही हिन्दी साहित्य में आध्यात्मिकता को अभिव्यक्ति प्राप्त होती रही है। ब्राह्मण, बौद्ध, जैन, इस्लाम, सिख, इसाई—हिन्दी साहित्य ने सभी को आत्मसात किया है। इतना ही नहीं, एक ही समय में अनेक विचारधाराओं के संवहन का काम भी हिन्दी साहित्य ने सुचारू रूप से किया है। हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल इस का सशक्त प्रमाण है। तुलसी हों या सूर, कबीर हों या जायसी सभी ने अपनी-अपनी दृष्टि एवं सामर्थ्य के अनुसार आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी गुत्थियों को सुलझाने का यत्न किया तथा जीव और जगत के सम्बन्धों की सूक्ष्मता को पहचानने की कोशिश की।

भक्तिकाल के बाद रीतिकाल से होती हुई हिन्दी साहित्य-सरिता जब आधुनिक काल में प्रविष्ट हुई तो परिस्थितियों में आ गए भारी बदलाव की मांग को सामने रखते हुये इसने भी अपने रूप में परिवर्तन लाने की चेष्टा की। परम्परागत चिन्तन पद्धतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ ही साथ इस ने आधुनिक चिंतकों की विचारधाराओं से भी जनता को परिचित कराने का यत्न किया। ऐसे ही कुछ विचारकों में से थे—योगीराज श्री अरविन्द।

योगीराज श्री अरविन्द ने अपने दर्शन का प्रतिपादन करने तथा अपनी मान्यताओं की स्थापना के लिए अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अंग्रेजी भाषा को अपनाया था। यह सच है कि अपने जीवन के उत्तर काल में उन्होंने बहुत सी अन्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था तथापि यह भी सत्य है कि हिन्दी

भाषा एवं साहित्य की ओर वे उन्मुख नहीं हुए। लेकिन हिन्दी का साहित्यकार जागरूक है। समय की मांग और समय की पुकार के प्रति उत्तरदायी है। वह अन्य भाषाओं में व्यक्त की गई जीवन पद्धतियों और विचाराधाराओं के प्रति सदैव ग्रहणशील रहा है। इसीलिए श्री अरविन्द का चिन्तन भी हिन्दी साहित्यकार के लिए अछूता न रहा। उस ने अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से श्री अरविन्द की विचार-धारा से परिचय प्राप्त किया, उन की मान्यताओं को समझा-परखा और अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया। इस रूप में कविवर सुमित्रानंदन पंत प्रभृति कवियों ने श्री अरविन्द के 'आरोह-अवरोह' तथा 'उतम-पुरुष' के सिद्धांतों से प्रभावित होकर अपने साहित्य को एक नयी दिशा दी। अरविन्द की आध्यात्मिक विचारधारा तथा काव्य-शिल्प सम्बन्धी मान्यताओं को प्रतिपादित करने वाली अनेक उत्कृष्ट रचनाएं सामने आ जाने पर आलोचक को इन के मूल्यांकन के लिए सही मानदण्ड तलाशने पड़े। शीघ्र ही स्पष्ट हुआ कि हिन्दी साहित्य का एक बहुत बड़ा भाग अरविन्द से प्रभावित है। विश्वविद्यालीय हिन्दी विभागों में अरविन्द के अपने साहित्य तथा उन के आदर्शों से प्रभावित हिन्दी साहित्य का अध्ययन-मूल्यांकन किया जाने लगा। परिणामस्वरूप "हिन्दी काव्य और अरविन्द दर्शन" जैसी शोधकृतियां हमारे सामने आईं।

'शीराज़ा' हिन्दी का प्रस्तुत अंक इसी अध्ययन-मूल्यांकन की एक झलक प्रस्तुत करता है। इस में श्री अरविन्द की रचनाओं एवं मान्यताओं सम्बन्धी लेखों का समावेश किया गया है। अरविन्द के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए एक कविता भी प्रकाशित की जा रही है।

पाठकीय प्रतिक्रियाओं की, हम, सदा की भांति प्रतीक्षा करेंगे।

शशिशेखर तोषखानी



श्री अरविन्द का कवि-व्यक्तित्व

मानव-मूल्यों के तीव्र विघटन और उनके स्थान पर नये मूल्यों की प्रतिष्ठा न हो पाने से आज दुनियां में एक व्यापक सांस्कृतिक शून्य उत्पन्न हो गया है। अनास्था, भग्नाशा, दिग्भ्रम, तनाव, टूटन की स्थितियों को झेल रहा मूल्यविमूढ़ आधुनिक मनुष्य जीने का कोई सार्थक और सन्तोषप्रद आधार तलाश रहा है। अर्थ के लिए उसकी इस अव्याख्येय आकुलता, उसकी गहरी खोज में आज का साहित्य और आज का विचार दर्शन अपने-अपने स्तर पर उसका साथ देने का प्रयत्न कर रहे हैं। दोनों मानवीय स्थिति की भयावहता के प्रति चिन्तित हैं और इस सवाल पर एक दूसरे की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए प्रतीत होते हैं। आधुनिक दर्शन की अस्तित्ववादी और अरविन्दवादी चिन्ताधाराओं में यह अतिक्रमण विशेष रूप से देखा जा सकता है। अरविन्द में तो दर्शन कविता की भाषा में बोलता है और कविता दर्शन की भाषा में। अत: एक कवि के रूप में अरविन्द के व्यक्तित्व को उन के विचार-दर्शन के सन्दर्भ में ही मूल्यांकित किया जा सकता है। उनका काव्य वस्तुतः उनकी दार्शनिक धारणाओं का ही प्रक्षेप है।

अरविन्द के कवि-रूप के पीछे 'समग्र योग' की जो उनकी दर्शन-धारा है उसकी विशिष्टता यही नहीं कि वह आस्तिकता और अध्यात्म की समसामयिक सन्दर्भों में सार्थकता पर बल देती है, उस के विषय में सब से महत्वपूर्ण बात यह है कि वह अकेले व्यक्ति की मुक्ति का प्रतिपादन न करके समस्त मानव-समुदाय की सामूहिक मुक्ति

का आह्वान करती है। उनके बृहत् महाकाव्य की नायिका सावित्री कहती है :—

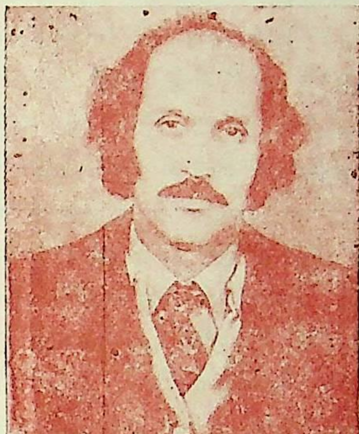
अकेले की स्वतन्त्रता में नहीं है सन्तोष
मैं अपनी आत्मा की मुक्ति
सब के लिए मांगती हूं।

इस दृष्टि से पारम्परिक भारतीय दार्शनिक चिन्तन से अरविन्द का स्वर कुछ भिन्न है यद्यपि वे बहुत अंशों में उसी की शब्दावली का प्रयोग करते हैं। अरविन्द ने अपने दर्शन में जिन मूलभूत प्रश्नों को उठाया है उनका सम्बन्ध मानव-अस्तित्व और मानव नियति से है। आधुनिक यूरोपीय दार्शनिकों में हम स्पेंग्लर, हाइडेगर और सार्त्र को बहुत हद तक वैसे ही सवालों को पूछते हुए पाते हैं।

ऑस्वाल्ड स्पेंग्लर ने अपनी विश्वविख्यात कृति -"पश्चिम का ह्रास" में इतिहास का एक नया दर्शन प्रस्तुत किया है जो इतिहास की आकस्मिकतावादी-व्याख्या का खण्डन करता है। इतिहास को गति देने वाली शक्ति को स्पेंग्लर 'नियति' कहते हैं। बर्गसां ने उसे "काल का शुद्ध प्रवाह" की संज्ञा दी है। उस के विचार से काल ही एक क्षुद्र प्रवाह के रूप में वास्तविकता है, किन्तु वास्तविकता की सभी बौद्धिक व्याख्याएं उसे (काल को) दिक् के आयाम में रूपान्तरित करती है। स्पेंग्लर के अनुसार इतिहास के दो भेद हैं। जिन्हें वे "पुरुष का इतिहास" और "नारी का इतिहास" संज्ञाओं से अभिहित करते हैं। 'नारी का इतिहास' स्वयं नियति है। वह वैश्विक है जबकि 'पुरुष का इतिहास' राजनीतिक ! यह एक मूलभूत द्वैत है जिसे कोई पाट नहीं सकता और जो दुनिया में सार्वजनिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन, सार्वजनिक नियम और व्यक्तिगत नियम आदि रूपों में दृष्टिगत होता है और एक उच्चतर धरातल पर 'राज्य' और 'परिवार' की धारणाओं को व्यक्त करता है। गतिशील समय का वह दोहरा पहलू जीवन-धारा को, ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ती जाती है, एक कड़ापन, एक कठोरता प्रदान करता है। इस प्रक्रिया में जीवन-प्रवाह का लचीलापन उत्तरोत्तर कम हो जाता है और पूर्णतया लुप्त हो जाता है ! यही हाल देर-सवेर सस्कृति का भी होताहै। स्पेंग्लर इसे संस्कृति का सभ्यता में रूपान्तरण कहते हैं। संस्कृति जीवन-धारा के अबाध प्रवाह का प्रतिनिधित्व करती है जबकि सभ्यता उसे कड़े पथराये हुए रूपाकारों में परिवर्तित करती है। विकास की यह अनिवार्य आधारभूत प्रक्रिया अकेली पश्चिम की संस्कृति के ह्रास का कारण नहीं, सभी संस्कृतियों की जीवनी-शक्ति इसी भांति धीरे-धीरे पथरा जाती है और यह सिलसिला तब तक जारी रहता है जब तक विनष्ट हो चुकी संस्कृति का स्थान लेने एक नयी संस्कृति जन्म न ले ले। लेकिन इसका कोई ठिकाना नहीं कि यह

नयी संस्कृति किस मिट्टी से कब प्रकट होगी। जरूरी नहीं कि उसका जन्म वहीं हो जहां पुरानी संस्कृति की लाश गड़ी पड़ी हो। यहां अरविन्दवादी विचार-दर्शन यह प्रश्न पूछता है कि क्या यही इतिहास की गति है ? क्या इतिहास "बिना गन्तव्य के एक नियति मात्र है ?"

जहां तक इतिहास की तार्किक अथवा आकस्मिकतावादी व्याख्याओं का सम्बन्ध है स्पेंग्लर की भांति अरविन्द भी उसे अस्वीकार करते हैं। मनुष्य की सम्पूर्ण गति-मति को केवल तर्कणा (रीज़न) के मानदण्ड से मापने को वे तैयार नहीं। नियतिवाद, अर्थात् इस धारणा का कि मानव-जीवन अव्याख्येय और उद्देश्य निरपेक्ष शक्तियों के हाथों में एक कठपुतली मात्र है, का अरविन्द और स्पेंग्लर दोनों विरोध करते हैं। पर जहां स्पेंग्लर नियतिवाद की जकड़ से मुक्ति पूर्ण अनियतता में मानते हैं, वहां अरविन्द निम्न प्रकार के नियतिवाद और उच्चतर नियतिवाद में भेद करते हैं। उनके अनुसार निम्न नियतिवाद से उच्चतर नियतिवाद की



ओर जाना ही विकास का वास्तविक अर्थ है। जीवन-धारा का पथरा जाना ही उस की गति की इति नहीं, ठहरी या पथरायी हुई लहर का स्थान लेने के लिए एक नयी लहर आती है। चार युगों की हिन्दू धारणा की भांति स्पेंग्लर भी संस्कृति को चक्रों में बांटते हैं। हर संस्कृति को वसन्त, ग्रीष्म, शरद और शिशिर के ऋतुक्रम अर्थात् वृद्धि, प्रौढ़ता, क्षय और अंतिम पतन की स्थितियों से गुजरना अनिवार्य है। संस्कृति के इस चक्रिक-क्रम को अरविन्द विकास-प्रक्रिया का पर्याय मानने से इनकार करते हैं। उन की दृष्टि से विकास एक प्रयाण है निम्न स्तरों से उच्चतर स्तरों की ओर जिस का क्रम जैविक और मानसिक धरातलों से होता हुआ "सच्चिदानंद" अर्थात् चरम सत्ता तक चलता चला जाता है।

अस्तित्व और अनस्तित्व के मूलभूत गहन प्रश्नों को उठाते समय लगता है कि अरविन्द तो अस्तित्ववादी चिन्तकों की सी भाषा में बात कर रहे हैं। उन्हीं की भांति मानव-अस्तित्व को दर्शन का आधार-बिन्दु बनाने का अरविन्द का आग्रह कीर्केगार्द के इस कथन की याद दिलाता है कि शुद्ध-विचार तो शुद्ध अति कल्पना है। वास्तविकता को उस से निस्संग रह कर, उस के बाहर रह कर जाना नहीं जा

सकता। वास्तविकता को जानने के लिए आवश्यक है कि वह अनुभव का अंग बन जाए! प्रत्यक्ष अनुभव पर, भोगे हुए यथार्थ पर अस्तित्ववादी विशेष बल देते हैं। उन्हें मानवीय स्थिति को अमूर्त तर्कणा या विचारणा द्वारा उद्घाटित करने का उपक्रम व्यर्थ लगता है क्योंकि अमूर्त विचार की प्रक्रिया हमें कहीं नहीं ले जाती। अरविन्द उनके बेहद करीब जान पड़ते हैं क्योंकि वे भी तार्किक बुद्धि को अस्तित्व और अनस्तित्व के सवालों के समाधान में नितान्त अक्षम और अनुपयुक्त मानते हैं। कीर्केगार्द तर्कणा के स्थान पर आस्था की प्रतिष्ठा चाहते हैं और अरविन्द भी। मार्टिन हाइडेगर "यहां और अब" में विश्वास रखते हैं न कि वैचारिक अमूर्तताओं में। इस दृष्टि से अरविन्द की चित्तप्रवृत्ति उन के दार्शनिक मन्तव्यों से काफी साम्य रखती है। दोनों की दृष्टि में इस क्षण इस धरती पर होना अपने में एक चामत्कारिक अनुभूति है। इस आश्चर्यजनक, अद्भुत् व्याख्यातीत चामत्कारिक वास्तविकता के स्पर्श के प्रति अरविन्द और हाइडेगर दोनों आग्रहशील हैं। अरविन्द यह अनुभव करते हैं कि आज सभी संगठित धर्ममत चुक गये हैं, फीके पड़ गये हैं और मनुष्य को कुछ भी दे सकने में अक्षम हो गये हैं। हाइडेगर के अनुसार सभी धार्मिक या दार्शनिक मत अंततोगत्वा नष्ट हो जायेंगे क्योंकि वे अतिशय तर्कणा का आश्रय लेते हैं। इस बात पर दोनों चिन्तकों के एकमत होने के बावजूद दोनों की दृष्टि में एक मौलिक अंतर है। हाइडेगर की दृष्टि अत्यन्त नकारात्मक और शून्यवादी है। वे घुमा-फिरा कर 'मृत्यु' पर आ जाते हैं जो उन की चिन्तना का सब से महत्वपूर्ण शब्द है अरविन्द आज की पतनशील मानसिकता के स्थान पर एक उच्चतर मानसिकता की प्रतिष्ठा की बात करते हैं और इस संदर्भ में अपनी 'अतिमानव' की परिकल्पना प्रस्तुत करते हैं, जो मनुष्य के भावी विकास की संभावना की ओर एक इंगित है। नीत्शे के 'अतिमानव' से अरविन्द का यह अतिमानव काफी भिन्न है। अरविन्द के लिए अतिमानव का अर्थ विकास के क्रमिक स्तरों से गुजरते हुए व्यक्ति का ईश्वर-रूप हो जाना है। मनुष्य की नियति, अरविन्द के अनुसार, मृत्यु में खो जाना नहीं, मृत्यु का अतिक्रमण करना है, अतिमानव बनना है अर्थात् सशरीर अपने सम्पूर्ण अस्तित्व का दिव्य रूपान्तरण। 'सावित्री' में अतिमानव का यह स्वरूप प्रस्तुत किया गया है—

> जन्म लेगा जब अतिमानव—शासक प्रकृति का—
>
> उस की उपस्थिति करेगी
>
> पदार्थमय इस संसार का
>
> रूपान्तरण!
>
> प्रकृति की रात्रि में वह

प्रज्ज्वलित करेगा सत्य की अग्नि
और मनुष्य अपनी आत्मा की पुकार की ओर आकृष्ट हो
अपनी छिपी संभावनाओं के प्रति
होगा जागरूक—
उस सब के प्रति
जो उसके हृदय के बीच सोया पड़ा था !

अरविन्द का अतिमानव अपनी ही ऊंचाइयों पर बढ़ता हुआ भावी-मनुष्य है। मनुष्य का भविष्य और भविष्य का मनुष्य उन के चिन्तन का लक्ष्य बिन्दु है।

शताब्दियों से धर्म सिर्फ इस बात पर जोर देता रहा है कि मनुष्य को ईश्वर की अपने लिए आवश्यकता है, पर इस क्रम को उलटते हुए अरविन्द ईश्वर के लिए मनुष्य की आवश्यकता पर बल देते हैं। आज ईश्वर मनुष्य द्वारा उपेक्षित पड़ा है ! मनुष्य को चरम सत्ता के लिए, समरसता के लिए क्रियाशील होना पड़ेगा। महान अस्तित्ववादी जर्मन कवि रेनियर मारिया रिल्के ने भी अपनी अनेक कविताओं में इस विचार को व्यक्त किया है। इन कविताओं का कथ्य है ईश्वर के लिए मनुष्य की आवश्यकता और ईश्वर द्वारा मनुष्य की प्रतीक्षा। कितना अकेला, कितना दयनीय होगा ईश्वर यदि मनुष्य उस की परवाह करना छोड़ दे। अपनी एक कविता में रिल्के ने ईश्वर को एक महान किन्तु उपेक्षित पड़ोसी के रूप में प्रस्तुत किया है—

ओ पड़ोसी ईश्वर !
तुम पर्वत पर अपनी छोटी-सी कुटिया में रहते हो
एक अकेले
काश मैं तुम्हारे पास जा सकता
और तुम्हारा साथ देता
पर तुम्हारा आवास खोज लेना आसान नहीं
वहां तक जाने वाले पथ पर कोई चलता नहीं है
और समय की रेत
और हवाएं उस पथ पर छा गयी हैं
पर अगर मैं किसी भांति रास्ता पा लूं
और तुम्हारे द्वार पर दस्तक दूं
तो जानता हूं मेरा कितना-कितना स्वागत होगा !
ओ पड़ोसी ईश्वर,
तुम्हारे पास पिछले कुछ समय से
बहुत कम लोग आये है !

अरविन्द ईश्वर को उस चरम सत्ता के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो हमारे माध्यम से स्वयं अपने को तलाशती है। उन का कथन है कि चरम सत्ता ने, सच्चिदानंद ने, अवचेतन के निम्नतम स्तर तक हर आयु में स्वयं को प्रतिच्छायित किया है। हम स्वयं ब्रह्म के श्वासोच्छ्‌वास हैं।

मनुष्य के दुःख और अन्तर्द्वन्द्व के शमन का एक मात्र उपाय अरविन्द अतिमानसीय विस्तारों की दिशा में उस की विकास-यात्रा को मानते हैं। अतिमानस की परिकल्पना अरविन्द के विचार-दर्शन की एक मौलिक और आधार भूत धारणा है। उन के शब्दों में यह एक सृजनात्मक विचार है जिस में चरम सत्ता का सम्पूर्ण सत्य निहित है। मन और जैविक स्तर का जीवन इस सत्य का निकृष्टतम रूप प्रस्तुत करता है। मन वास्तविकता को परिसीमित करता है, बांटता है, अस्तित्व की अदृश्य समग्रता से पृथक् करता है, मन सत्य के शरीर का स्पर्श नहीं कर पाता, मनुष्य को निर्बाध आनंद की उपलब्धि नहीं करा सकता —

> मन ही कृतिकार है, दर्शक है, अभिनेता है, मंच है !
> केवल मन ही है
> और जो वह विचारता है वही प्रत्यक्ष होता है
> मन यदि सब कुछ है तो आनंद की आशा छोड़ दो
> क्योंकि मन कभी भी सत्य के शरीर को छू नहीं सकता
> मन कभी ईश्वर के आत्म को देख नहीं सकता।
>
> ["सावित्री"]

इस के विपरीत अतिमानस अनंत क्षमताओं से युक्त है—एक व्यापक, असीम, सर्वज्ञ, सृजनात्मक चेतना ! मानवीय साइकी की मूलभूत आवश्यकताओं का वह एक मात्र उत्तर है। उसके सामने मृत्यु अनंत मौन में घुल जाती है, विलीन हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य के भौतिक परिवेश की ठोस वास्तविकताएं अरविन्द के दर्शन में विराट अतिकल्पनाओं में खो जाती हैं। आधुनिक मनुष्य की शंका, दिग्भ्रम, पीड़ा का समाधान तलाशते हुए अरविन्द अस्तित्ववादी आरम्भ बिन्दु से आध्यात्मिक रहस्यवाद के झिलमिलाते ऊर्ध्व-लोकों में पहुंच जाते हैं : इन्हीं "अज्ञात लोकों का नक्शा" हमें उनकी कविता में भी मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके दार्शनिक विचार शब्द, छन्द, लय, बिम्ब के मुखौटे पहने हुए काव्य-मंच पर उतरते हैं।

शायद यही कारण है कि अरविन्द की कविता अज्ञात दूरियों से आ रही प्रति-ध्वनियों-सी प्रतीत होती है--सामान्य जन की पकड़ से बाहर, परिचित अनुभव की

सीमाओं से परे ! स्वयं अरविन्द के अनुयायी इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस कविता की पहचान सरल नहीं। 'चरम सत्ता', 'अतिमानस', 'अनंत', 'स्वर्णपुरुष', 'भू-मन', जैसी विराट अमूर्तताओं की उसमें सृष्टि हुई है जो अरविन्द-दर्शन की विशिष्ट शब्दावली से बेखबर अध्येता के बोध से फिसल-फिसल पड़ती हैं। अरविन्दवादी चिन्तक श्री के० डी० सेठना के शब्दों में अरविन्द की काव्य-कृतियों में ध्वनित विचार को पकड़ पाना, उनकी "असामान्य वाणी" को सुन पाना हमारे लिए तब तक सम्भव नहीं जब तक हम "अपने में एक आन्तरिक निश्चलता, एक भीतरी शांति न पैदा करें !" यह वह बिन्दु है जहां—

"विचार थक जाता है
और शब्द मूक हो जाते हैं।"

["सावित्री"]

अरविन्द द्वारा रचित २३, ८१३ पंक्तियों का बृहत्काय महाकाव्य "सावित्री" धरती पर दिव्य-जीवन के अवतरण की प्रतीक-कथा है। आध्यात्मिक रहस्यवाद का प्रभामण्डल उस में सर्वत्र जगमगाता है।" महाभारत में वर्णित सावित्री और सत्यवान के पुराख्यान को जिस में प्रेम की मृत्यु पर विजय दिखलायी गयी है, मनुष्य के मन, शरीर, जीवन सब के एक दिव्य-चेतना में रूपान्तरण की गाथा का रूप दिया गया है। कथानायिका सावित्री मात्र एक दिव्य नारी नहीं, पिता अश्वपति की धरती को जड़ता के भार से मुक्ति दिलाने के लिए किसी जीवित दिव्य सत्ता के अवतार की प्रार्थना के उत्तर में प्रकट हुई दैवी अनुग्रह की प्रतीक है :—

सावित्री, तुम हो मेरी आत्मा की शक्ति
मेरे मृत्यु विहीन शब्द को ध्वनित करने वाली वाणी,
समय के पथ पर अंकित सत्य का चेहरा।

["सावित्री"]

वह एक माध्यम है ईश्वरीय शक्ति और सत्य की चिरन्तन प्रवहमानता का ! उस का उद्देश्य है धरती पर ईश्वर का अवतरण ताकि वह दिव्य उल्लास का गेह बन जाये और सब अन्तर्विरोधों, अन्तर्द्वन्द्वों का शमन हो सके। सावित्री अपनी ही आन्तरिकता की गहराइयों में यह ईश्वरीय वाणी सुनती है :—

सावित्री सुनो,
अपने जीवन में मेरे सौन्दर्य का हास सुनो !
तुम पात्र हो जिस से उंडेलूंगा मैं उल्लास
सभी मार्गों पर अपने रथ की भांति घुमाऊंगा तुम्हें

तुम्हारा प्रयोग करूंगा अपनी तलवार
और अपनी वीणा के रूप में
वीणा—जिस पर छेड़ूंगा अपने विचार का सरगम !
तुम्हें अपने समयविहीन शक्ति-प्रवाह का मार्ग बनाऊंगा !

सत्यवान और सावित्री के प्रथम मिलन और प्रणय-परिणय की कथा में भी आध्यात्मिक प्रतीकवाद के तार गुंथे हैं, पुरुष-नारी के आकर्षण की मधुर ऊष्मा और विलास नहीं। सावित्री के भीतर एक दिव्य-ज्योति निरन्तर प्रज्ज्वलित रहती है और सत्यवान से उसका मिलन उसी की "दिव्य खोज" की प्रतीक-कथा है। उसके सौन्दर्य में नारी की देह-छवि का विह्वल कर देने वाला आकर्षण नहीं, एक दिव्य-आभा है, अपार्थिकता है। उसका यह सौन्दर्य वायवी और अतींद्रिय है और सम्पूर्ण महाकाव्य में कोई स्थल ऐसा नहीं जिस में वह हमारे सामने एक मानव-इकाई के सहज रूप में आती है। "वह है बस सपनों के वृक्ष पर खिला छवि का गुलाब।"

सत्यवान की मृत्यु का पूर्वज्ञान उसके व्यक्तित्व को एक उदात्त करुणामय रूप प्रदान करता है और साथ ही उसकी भीतरी दिव्यता के सत्य को उद्घाटित ! मृत्यु के समय महाकाव्य में सत्यवान को महाकाल के साथ मौन की दूरियों में जाते हुए दिखलाया गया है। सावित्री सभी आवरण उतार फेंकती है और अपनी आत्मा की गहराइयों (समाधि ?) में प्रवेश करती है। मृत्यु के देवता से वाद-विवाद में उलझ कर वह उस के सभी सूक्ष्म तर्कों का प्रत्युतर देती हुई अन्त में उस पर विजयी होती है। मृत्यु के चेहरे की मौन निरपेक्षता को वह छिन्न-विच्छिन्न कर डालती है और चेतना तथा समय की सीमाओं को तोड़ डालती है। वह मृत्यु की कालरात्रि को भेदने से भी घबराती नहीं जिस में वह पाती है :—

अन्धेरा उस से भी कहीं अधिक घना
जितना रात सह सकती है।

महाकाव्य में सावित्री को चेतना के धरातलों पर संघर्षरत दिखलाया गया है। उदासीनता, जड़ता, वासना आदि शक्तियों से और अपने हृदय की दुर्बलताओं से लड़ती हुई वह आखिर अपनी रहस्यमय दिव्यता के दर्शन करती है और दिव्यसत्ता में रूपान्तरित हो जाती है। उस के इस दिव्य तन्त्र के सामने मृत्यु परास्त हो जाती हैं, प्रकाश उसे निगल जाता है। सावित्री और सत्यवान वापस लौटते हैं धरती के जीवन को दिव्य-जीवन में बदल डालने के लिये। इस उद्देश्य के प्रति सावित्री को आरम्भ से ही पूर्णतया सचेत दिखलाया गया है—

हम आये हैं
संसार में ईश्वरीय सत्ता को अवतीर्ण करने

धरती के जीवन को एक दिव्य जीवन में
बदल डालने
अपने इस संकल्प को मैं अक्षुण्ण रखूंगी
और करूंगी परित्राण
मनुष्य का !

कहा जा सकता है कि सावित्री एक प्रतीक के रूप में सत्य, किन्तु एक नारी के रूप में अवास्तविक है।

"सावित्री" महाकाव्य में अनेक अस्तित्ववादी भावस्थितियां सशक्त काव्य-पंक्तियों में अभिव्यंजित हुई हैं। स्वयं नायिका का यह कथन—

"मैं हूं : मैं प्रेम करती हूं, देखती हूं, कार्य करती हूं !"

अस्तित्ववादी जीवन दर्शन का सूत्र-वाक्य सा प्रतीत होता है और सार्त्र की इस प्रसिद्ध उक्ति की याद दिलाता है—I think, therefore I am ! मैं विचारता हूं, इस लिए मैं हूं ! ऐसे स्थलों पर रहस्यवादी आवरण काव्य से मानों उतर जाता है। ऐसी ही हैं तर्कणा के अधूरेपन की शंका विषयक ये पंक्तियां—

......ज्ञान यहां हजारों चेहरों से युक्त है
और हर चेहरे पर बंधी है
शंका की पगड़ी !

["सावित्री"]

जीवन की अर्थहीनता, प्रयोजनहीनता को लेकर आधुनिक मन की प्रश्नाकुलता इन पंक्तियों में उबल पड़ी है—

आखिर क्यों है यह सब
यह श्रम, यह शोर ?
यह क्षणिक सुख, आंसुओं का समयहीन समुद्र !
आकांक्षा और आशा की पुकार
यह कभी न थमने वाली
अन्तहीन यात्रा
गति, चीख-पुकार, रुदन, ज्ञान, निरर्थक शब्द !......
कहां ले जाता है यह अभियान ?

मनुष्य की चेतना में धंसे आदिम भय का बिम्ब कितना सशक्त है—

एक विराट और अज्ञात भय
उस की नसों को खींचने लगा
जैसे खींचता है वन्य पशु

आधे मारे हुए
अपने शिकार को !

इसी भांति मनुष्य के भीतर छिपी विद्रोह-चेतना का यह रूप है जो अपने प्रभाव में मिल्टन के शैतान के-से आयाम ग्रहण करता है—

चेतना की गहराइयों में
दुबका हुआ, गुर्राता हुआ
वह जो पशु है
मैं हूं !
वह पुरुष
जिसे संसार के विशाल सलीब पर
लटका दिया गया है !
मेरी पीड़ा का रस लेने के लिए ही
ईश्वर ने पृथ्वी बनायी
मेरी वासना को बनाया उसने अपने नाटक की कथावस्तु !
नग्न उसने भेजा है मुझे इस दुःखपूर्ण संसार में
और पीटा है मुझे शोक और पीड़ा की लाठी से
ताकि मैं चिल्लाऊं
और उसके चरणों पर गिड़गिड़ा कर
अपने अश्रु और रक्त से
करूं उसकी पूजा !

यद्यपि इस चेतना को कवि ने मनुष्य की प्रेम-शक्ति के सामने तुच्छ दिखलाया है, पर वह फिर भी काफी विश्वसनीय और वास्तविक लगती है। मिल्टन के "पैराडाइज़ लॉस्ट" की-सी शैली और शिल्प स्थापत्य अरविन्द की सावित्री में भी है। मिल्टन का उद्देश्य "मनुष्य को ईश्वर का मार्ग सुझाना" था तो अरविन्द का उद्देश्य है धरती पर दिव्य जीवन का अवतरण, अमरता और आनन्द के एक नये युग का सूत्रपात जिस में मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक सीमाओं से ऊपर उठ कर ईश्वरीय सत्ता अपने प्रति भासित पायेगा ! आत्मा के ऊर्ध्व लोक में मनुष्य का संचरण अरविन्द की कविताओं का मुख्य कथ्य है और उनके विचार दर्शन का मूल स्वर भी ! मनुष्य की बाह्यात्मकता की मिट्टी पर "ईश्वर के सूर्य-हस्त" रखने का प्रयास उन्होंने अपनी कविता और दर्शन दोनों में किया है। उनके कवि को उनके दार्शनिक से पृथक् करके देखना सम्भव नहीं क्योंकि दोनों एक हैं !



डॉ० वेद कुमारी



श्री अरविन्द और संस्कृत साहित्य

भारत की पवित्र धरती पर जन्मे अगण्य दार्शनिकों, ऋषियों और कवियों की दीर्घ परम्परा में योगी अरविन्द का महत्वपूर्ण स्थान है। उन के पिता डॉ० कृष्णघन घोष उन्हें भारतीय संस्कृति से नितांत अपरिचित रख कर केवल अंग्रेजी संस्कृति सिखाना चाहते थे। पांच वर्ष की आयु में उन्हें दार्जिलिंग के लारेटो कान्वेंट में भेज दिया गया था और सात वर्ष के होने पर वह इंग्लैंड चले गये जहां २१ वर्ष की आयु तक उन्होंने अन्य विषयों के साथ-साथ ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, इटालियन, जर्मन, स्पेनिश आदि भाषाओं में भी प्रौढ़ता प्राप्त कर ली। पूर्ण रूप से अंग्रेजी सभ्यता में पले अरविन्द के हृदय में स्वदेशभक्ति की चिंगारी पहले ही विद्यमान थी पर भारत लौटने पर वह प्रबल रूप से प्रज्वलित हो उठी। गायकवाड़ राज्य में बिताये १३ वर्षों में उन का पूर्णरूपेण भारतीयकरण ही नहीं हुआ वे भारतीय संस्कृति के व्याख्याता और सजग समर्थक के रूप में भी उभर आए। थोड़े से समय में ही उन्होंने संस्कृत भाषा में इतनी गति प्राप्त कर ली कि वे वेद उपनिषद् गीता आदि ग्रन्थों पर टीकायें लिखने में समर्थ हो गये। जहां संस्कृत साहित्य के अध्ययन ने श्री अरविन्द को आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ने में सहायता प्रदान की वहां श्री अरविन्द द्वारा किये गये संस्कृत साहित्य के मूल्यांकन ने संस्कृत साहित्य को भी उस उच्च धरातल पर पहुंचाने में पर्याप्त योगदान दिया जहां से उसे अज्ञानतावश गिरा दिया गया था।

श्री अरविन्द की दृष्टि में वेद

श्री अरविन्द ने १९१४ ई० में पांडिचेरी से एक अंग्रेजी मासिक पत्रिका "आर्य" निकालनी शुरू की थी जिस में उनकी दो लेख मालाएं The Life Divine (दिव्य जीवन) तथा The Secret of the Veda (वेद रहस्य) प्रकाशित होती रहीं। बाद में ये दोनों लेखमालाएं पुस्तक रूप में प्रकाशित हुईं। 'दिव्य जीवन' के प्रत्येक अध्याय में वेद या उपनिषद् के वचनों की व्याख्या है तथा वेद रहस्य में वेद के प्रतिपाद्य विषय, वैदिक देवताओं के स्वरूप तथा वैदिक मन्त्रों के अर्थों पर श्री अरविन्द के विचार उपलब्ध होते हैं। इस में श्री अरविन्द ने वेद के प्राचीन तथा अर्वाचीन भाष्यकारों की विद्वतापूर्ण समीक्षा करते हुए अपना मत प्रस्तुत किया है।

इस में कोई सन्देह नहीं कि सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में, भारतीयों की दृष्टि में वेद सर्वाधिक पूजास्पद रहे हैं। जब वेदों का अभिप्राय लोगों की समझ में आना बन्द हो चुका था तब भी वे आदर की दृष्टि से ही देखे जाते थे। 'वेदाः प्रमाणम्' का घोष उन्हें सभी प्रकार के ज्ञान तथा कर्म के लिए आधार मानता रहा है। भारत की दार्शनिक परम्पराओं की आधारशिला बने हुए ये वेद असल में क्या हैं इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर श्री अरविन्द ने विस्तार से विचार किया है। वेदों का अध्ययन करने से पूर्व श्री अरविन्द अंग्रेजी पढ़े लिखे भारतीयों की तरह पाश्चात्य विद्वानों के वेद-सम्बन्धी मत को ही स्वीकार करते थे कि उन में केवल प्राकृतिक शक्तियों को देव मान कर उन की पूजा का विवरण है या कर्मकाण्ड में प्रयुक्त किये जाने वाले जादू-टोटके और खुशामदी स्तोत्र हैं जिन्हें गाकर उस आदि युग के असभ्य अन्ध-विश्वासी मानव अन्न, पशु तथा सुवर्ण आदि पाने की आशा करते थे तथा जिन्हें बोल कर वे रोगों को भगाने की तथा शत्रुओं को नष्ट करने की इच्छा करते थे। वेद के सम्पर्क को पाकर उन की यह धारणा पूर्णतया बदल गई। वेद रहस्य के पांचवें अध्याय में वे लिखते हैं "वैदिक विचार के साथ मेरा प्रथम परिचय अप्रत्यक्ष रूप से उस समय हुआ जब कि मैं भारतीय योग की विधि के अनुसार आत्मविकास की किन्हीं दशाओं में अभ्यास कर रहा था।" अभ्यास करते हुए उन्होंने ध्यान में तीन देवियां इड़ा, सरस्वती और सरमा देखी। तब तक उन्होंने वेद का स्वाध्याय नहीं किया था। सरमा को तो उन्होंने वेद में वर्णित एक पात्र के रूप में सुन रखा था परन्तु इड़ा तथा सरस्वती को वे पौराणिक कथानकों के अनुसार चन्द्रवंश की माता तथा विद्या की अधिष्ठात्री देवी ही मानते थे। पर वस्तुतः ये कुछ और ही थीं और इन तीनों का वास्तविक अर्थ उन्हें वेद में उल्लिखित 'तिस्रो देवीः' में

प्राप्त हुआ । वेद में वर्णित ये तीनों देवियां— इड़ा, सरस्वती और सरमा—अरविन्द के अनुसार क्रमशः-स्वतः प्रकाश, अन्तः प्रेरणा तथा अन्तर्ज्ञान हैं ।

पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों का अध्ययन मुख्यतया इतिहास की दृष्टि से किया था । आर्य तथा दस्युओं के मध्य हुए युद्ध सम्बन्धी उनके निष्कर्षों की परीक्षा करने में भी श्री अरविन्द की दिलचस्पी थी । वे वेदरहस्य में ही लिखते हैं—"इस लिए मेरी दोहरी दिलचस्पी थी जिस से प्रेरित होकर मैंने पहिले पहल मूल वेद को अपने हाथ में लिया । यद्यपि उस समय मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं था कि मैं वेद का सूक्ष्म या गम्भीर अध्ययन करूंगा । मुझे यह देखने में अधिक समय नहीं लगा कि वेद में कहे जाने वाले आर्यों और दस्युओं के बीच में जातीय विभाग सूचक निर्देश तथा यह बताने वाले निर्देश कि दस्यु और आदिम भारत निवासी एक ही थे, जितना कि मैंने कल्पना की हुई थी, उस से भी कहीं अधिक निस्सार हैं । परन्तु इस से भी अधिक दिलचस्पी का विषय मेरे लिए यह था कि इन प्राचीन सूक्तों के अन्दर उपेक्षित पड़े हुए जो गम्भीर आध्यात्मिक विचारों का बड़ा भारी समुदाय है और जो अनुभूति है उस का पता लगाना और इस अंग की महत्ता तब मेरी दृष्टि में और भी बढ़ गई जब कि पहिले तो मैंने यह देखा कि वेद के मन्त्र एक स्पष्ट और ठीक प्रकाश के साथ मेरी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को प्रकाशित करते हैं, जिन के लिए न तो योरोपियन अध्यात्म विज्ञान में, न ही योग की या वेदान्त की शिक्षाओं में, जहां तक मैं इन से परिचित था, मुझे कोई पर्याप्त स्पष्टीकरण मिलता था और दूसरी यह कि वे उपनिषदों के उन धुंधले संदर्भों और विचारों पर प्रकाश डालते थे जिन का कि पहिले मैं कोई ठीक-ठीक अर्थ नहीं कर पाता था और इस के साथ ही इन से पुराणों के भी बहुत से भाग के एक नये अभिप्राय का पता लगता था ।" उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि "इस परिणाम पर पहुंचने में, सौभाग्य-वश मैंने जो सायण के भाष्य को पहले नहीं पढ़ा था, उस ने मेरी बहुत सहायता की ।"

श्री अरविन्द ने वेद के आध्यात्मिक अर्थ किये हैं और उसे माना है ऐसी "दिव्य वाणी जो कंपन करती हुई असीम में से निकल कर उस मनुष्य के अन्तःकरण में पहुंची जिस ने पहले से ही अपने आप को अपौरुषेय ज्ञान का पात्र बना रखा था ।" पाश्चात्यों द्वारा किये वेद भाष्यों तथा सायण के वेद भाष्य का उल्लेख करते हुए वे अन्यत्र लिखते हैं—"यह नहीं हो सकता कि अब हम अधिक देर तक वेद को अज्ञान-पूर्ण आदर की तहों में लपेट कर या धार्मिक आत्मवंचना द्वारा संगोपित करके अत्यन्त पवित्र वस्तु की तरह सुरक्षित रख सकें । या तो वेद वह है जिसे सायण कहता है कि वेद यह हैं, और तब हमें वेद को ऐसे गाथाशास्त्र और कर्मकाण्ड के

लेखों के तौर पर जिन में कि अब विचारशील मनों के लिए कोई भी जीवित सत्य या बल नहीं रहा है, हमेशा के लिए छोड़ देना होगा या वेद वह है जिसे पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं कि वेद यह हैं और तब हमें वेद को अर्ध असभ्य जाति के पुरातन रिकार्ड के रूप में भूतकाल के अवशेषों में एक तरफ रख देना होगा या फिर वेद सचमुच वेद है दिव्य ज्ञान की पुस्तक है और तब हमारे लिए यह सर्वोपरि महत्व की चीज़ हो जाती है कि हम वेद को जानें और उसके सन्देश को सुनें ।[1]

सायण से कई शताब्दियां पहले यास्क ने अपने ग्रन्थ निरुक्त में वेदार्थ के क्षेत्र में तत्कालीन विभिन्न मतों की चर्चा की है जिन में ऐतिहासिकों, याज्ञिकों तथा वैयाकरणों के मत भी थे । सायण ने वेद का केवल याज्ञिक अर्थ ही लेते हुए अपना भाष्य किया है तथा यूरोपीय विद्वानों ने मुख्यतया सायण को ही आधार बना कर वेद की व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं । अरविन्द ने इन दोनों प्रकार की व्याख्याओं को छोड़ कर वेद का आध्यात्मिक अर्थ वेद मन्त्रों के अन्तः साक्ष्य के आधार पर किया है । ऋग्वेद की ४५०० से अधिक ऋचाओं की व्याख्या द्वारा उन्होंने सिद्ध किया है कि वेद की भाषा रूपकों, बिम्बों तथा प्रतीकों की भाषा है जिस के आवरण से चरम सत्य आवृत है । वैदिक ऋषियों ने प्रतीकों के माध्यम से ऊंचे से ऊंचे रहस्यों को अभिव्यक्त किया है परन्तु उस आवरण को समझे बिना उन रहस्यों को समझना कठिन है । अरविन्द का कथन है कि यदि एक बार हम केन्द्रभूत विचार को पकड़ लें और वैदिक ऋषियों की मनोवृत्ति तथा उन के प्रतीकवाद के नियम को समझ लें तो (वेद में) कोई भी असंगति और अव्यवस्था शेष नहीं रहती । वह केन्द्रभूत विचार है ।



एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति
ऋ. १. १६४. ४६.

अर्थात् एक ही सत् को ज्ञानी लोग अनेक प्रकार से कहते हैं । इन्द्र-वरुण मित्र गरूत्मान् वही कहाता है, उसे ही अग्नि यम तथा मातरिश्वा कहते हैं । सारे

1. 'दयानन्द और वेद' लेख से उद्धृत ।

वेद में इस विचार की पुष्टि करने वाले मन्त्र मिलते हैं परन्तु यूरोपीय भाष्यकार उन्हें एकेश्वरवाद Monolheism के पोषक न मान Henotheism को अभिव्यक्त करने वाले मानते हैं। ऐसे भाष्यकारों पर व्यंग्य करते हुए श्री अरविन्द लिखते हैं "सत्य को चाहिये वह अपने आप को छिपा ले, साधारण समझ को भी चाहिये वह बीच में रोड़ा न बन कर एक तरफ हो जाए जिस से कि उन की एक थ्योरी, एक वाद फल फूल सके !"

वैदिक भाषा की महती शक्तिशालिता का लाभ उठा कर वैदिक ऋषियों ने गौ धृत अग्नि यज्ञ आदि सैंकड़ों शब्दों को अनेक सम्बद्ध विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया। गौ का अर्थ किरण भी था, धृत का अर्थ प्रकाश भी था। गोतम गविस्थिर आदि विशेषणों में गौ का गाय अर्थ लेना हास्यास्पद है। इसी प्रकार जब वैदिक ऋषि "घृतप्रषा मनसा" का प्रयोग करता है तब वह प्रकाश बिखेरती हुई मानसिक शक्ति की चर्चा कर रहा होता है।

इस प्रकार श्री अरविन्द ने वेद के रहस्यमय अर्थों की उपलब्धि करके उस आध्यात्मिक सत्य के आदि रूप का अनावरण किया है जो हमें उपनिषदों में पल्लवित हुआ दिखाई देता है।

उपनिषद श्री अरविन्द के मतानुसार बौद्धिक ढंग का ऐसा वितर्क या आध्यात्मिक विवेचन नहीं जो भावों की परिभाषायें देने का, विचारों के चयन और अवच्छेदन का तथा सत्य को तर्क पर कसने का प्रयास करता है या जो भाषा सम्बन्धी तर्कों द्वारा मन को अपनी पूर्व धारणाओं को स्वीकार करने में सहायता देता है या जो इस या उस तर्क के प्रकाश में जीवन का समाधान प्रस्तुत करके उसी दृष्टिकोण से सब वस्तुओं को देखने में सन्तोष अनुभव कर लेता है। उपनिषद तो आत्मज्ञान सृष्टिज्ञान तथा परमात्मज्ञान के महाकाव्य हैं।[1]

श्री अरविन्द द्वारा की गई ईश तथा केन उपनिषद की विस्तृत व्याख्या तथा आठ उपनिषदों का अनुवाद संस्कृत साहित्य को उन की महती देन है।

अरविन्द की दृष्टि में रामायण तथा महाभारत

अरविन्द की एक पुस्तक "कालिदास" की प्रथम पंक्ति है "वाल्मीकि व्यास और कालिदास प्राचीन भारत के इतिहास का सार हैं। अन्य सब कुछ नष्ट हो जाने पर भी इन तीनों में पर्याप्त मात्रा में सांस्कृतिक इतिहास उपलब्ध हो सकेगा।" उन की दृष्टि में वेद और उपनिषद्, रामायण और महाभारत ये चारों भारतीय प्रतिभा के

1. Foundation of Indian Calture Page 305-306.

चार महोच्चार हैं। वैदिक ऋषियों का रहस्यमय ज्ञान उन प्रतीकों और छन्दों द्वारा प्रकट हुआ है जो हमारी आज की प्रकृति से दूर हैं परन्तु रामायण महाभारत का संगीत इस धरती का संगीत है। अरविन्द की दृष्टि में रामायण आर्यसभ्यता की आध्यात्मिक अवस्था का प्रतिनिधित्व करती है और महाभारत बौद्धिक दशा का प्रतीक है। रामायण का समाज एक आदर्श समाज है परन्तु अरविन्द का कथन है कि केवल इसी कारण इसे कविकल्पना प्रसूत नहीं माना जा सकता। कोई भी कवि इस प्रकार का विशाल सूक्ष्म और समन्वित चित्र केवल अपनी कल्पना के आधार पर प्रस्तुत नहीं कर सकता था। वाल्मीकि ने अपने युग से अनतिदूर अतीत का सहारा लिया जो राष्ट्रीय महत्ता और पवित्रता का युग था और उस युग के ढांचे में कवि ने मानव समाज का ऐसा श्रेष्ठ चित्र प्रस्तुत किया है जो तत्कालीन समाज की शक्तियों का पूर्ण सदुपयोग करने पर सम्भव था। वाल्मीकि के नायक राम नैतिकता के प्रतीक हैं और रावण अनैतिकता का प्रतिनिधि है। दोनों का संघर्ष और राम की विजय द्योतित करती है कि दिव्य प्रकाश की किरणों से प्रकाशित वाल्मीकि का कोमल, पवित्र, भावुक हृदय नैतिक शिथिलता तथा हिंसा का पूर्ण विरोधी था। श्री अरविन्द के विचार में रामायण विश्व की महान् कृति है। सभी के लिए सहसा इस उत्कृष्ट कृति की आत्मा में प्रवेश पाना सम्भव नहीं परन्तु जिन्होंने एक बार इस में प्रवेश पा लिया है वे संसार के किसी अन्य काव्य को इस से बढ़िया नहीं मानेंगे।

महाभारत की विशालता आश्चर्यजनक है। व्यास की विशाल बुद्धि ने व्यक्ति और समाज के जीवन का इतना विशाल फलक प्रस्तुत किया है कि उस पर, दया, क्षमा, त्याग तथा स्नेह भाव के और ईर्ष्या, वैर, कलह आदि के भी विविध रंग सफलता से अंकित हुए हैं। महाभारत में बुद्धितत्व प्रधान है, यहां नैतिकता को भी धर्माधर्म-बुद्धि के निकष पर परीक्षित करने का प्रयास मिलता है।

महाभारत का नवनीत कृष्ण का संगीत गीता है जिसे अरविन्द वेद तथा उपनिषद् की विचारधारा में एक कड़ी मानते हैं। वही चिरन्तन सत्य साहसपूर्ण और स्पष्ट शब्दमय काया ले कर प्रकट हुआ है। श्री अरविन्द की महत्वपूर्ण कृति "गीता प्रबन्ध" का अन्तिम निबन्ध गीता के सार को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। कुरुक्षेत्र की तरह मानव जीवन में भी अन्धकार और प्रकाश का संघर्ष निरन्तर चलता रहता है।

श्री अरविन्द ने कालिदास की कृतियों का गहरा अध्ययन किया था जो उनके लेखों—कालिदास का युग, कालिदास का ऋतु संहार आदि से स्पष्ट होता है। श्री अरविन्द मानते हैं कि कालिदास का युग रामायण महाभारत के युग से नितान्त भिन्न था। सर्जनकारी प्रतिभा का सौन्दर्य अब भौतिक उपादानों में उंडेला जा रहा था।

साहित्य के क्षेत्र में भी बाल्यावस्था की सरलता और शुद्धता का स्थान एक विकसित सौन्दर्यबोध ने ले लिया था। कालिदास के युग की कला की समृद्धि ने बाह्य सौन्दर्य का वह वातावरण तैयार कर दिया था जो उसकी कृतियों में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित है। उस की कविता का तानाबाना रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द की आनन्दमय अनुभूतियां हैं जिस में उस ने भावुकता के सुन्दरतम पुष्प गूंथे हैं। कालिदास की कविता में नैतिकता का भी सौन्दर्यीकरण हुआ है, वहां बुद्धि तत्व भी सौन्दर्यानुप्राणित है।

श्री अरविन्द के कथनानुसार साहित्य के क्षेत्र में कालिदास से बढ़ कर अधिक लचीली, समृद्ध और बहुमुखी प्रतिभा का मिलना अत्यन्त कठिन है।[1] किसी वस्तु विशेष को लेकर उसे साक्षात् आंखों के आगे उपस्थित कर देने की जैसी क्षमता इस कवि में है वैसी साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती।[2] मानव की प्रकृत चेतना इन्द्रियबोध से घिरी है और कालिदास इन्द्रियबोधयुक्त अनुभूतियों की राशि को ही समुचित लय में बांध कर व्यक्त करता है। उस सजग कलाकार की कविता में उक्ति-सौन्दर्य के साथ साथ अर्थ का सौन्दर्य भी ऊंची से ऊंची ऊंचाई तक जा पहुंचा है। कालिदास की कृतियों में ऊंचे आदर्शों के लिये अभिरुचि है, प्रशंसा है पर वह प्रशसा भी सहज सौन्दर्य बोध से परिवेष्ठित है। कालिदास की शैली में शब्दाडम्बर नहीं। नपे तुले शब्दों में सकेत मात्र से ही गम्भीर अर्थों को ध्वनित कर देना, छन्दों की मधुर लय, सुगठित गद्य का सशक्त देदीप्यमान सौन्दर्य और वीर काव्यों की गरिमामय स्पष्टता कालिदास की शैली की प्रमुख विशेषताएं हैं।

जहां अन्य कवियों की रचनाओं में युगचेतना के किसी एक पक्ष का अंकन मिलता है वहां कालिदास का काव्य समूची युग चेतना का सार है। विविध रंगों और रेखाओं से निर्मित पूर्ण चित्र है। ऋतु संहार उस युग चेतना की अपरिपक्व काव्यमय अभिव्यक्ति है, रघुवंश उस युग का प्रतिनिधि वीरकाव्य है, मेघदूत एक मनोरम वर्णनात्मक गीतिकाव्य है जिस में कल्पना और भावों का सौन्दर्य अकलमष रूप में प्रस्फुटित हुआ है, अभिज्ञानशाकुन्तल तथा अन्य दो नाटक प्रणय अठखेलियों के नाटकीय चित्र हैं तथा कुमार सम्भव एक महान धार्मिक गाथा है। श्री अरविन्द के शब्दों में कुमारसम्भव संस्कृत साहित्य की उसी ऊंचाई पर स्थित है जिस पर अंग्रेजी साहित्य के पैराडाइज लास्ट को रखा जा सकता है। इस महाकाव्य में शिव पार्वती का मिलन पुरुष और प्रकृति के मिलन का प्रतीक है।[3] अन्य काव्यों की तरह यहां नायक

---

1. कालिदास पृष्ठ 19
2. वही पृष्ठ 11
3. कालिदास पृष्ठ 15, 16

नायिका के लिए आतुर नहीं होता प्रत्युत प्रकृति—आत्मा रूप नायिका ही पुरुष-परमोत्मतत्व के लिए लालायित दिखाई देती है। शारीरिक सौन्दर्य का अभिमान टूट जाने पर पार्वती समाधि का आश्रय लेती है और तब मिलती है उसे वह अवन्ध्य-रूपराशि, दारुण तपस्या से उत्पन्न वह स्वर्गीय आभा जिसे देख शिव कह उठते हैं — आज तूने अपनी तपस्या से मुझे खरीद लिया है, मैं आज से तेरा खरीदा हुआ दास हूं। इस प्रकार ऐन्द्रिय प्रेम की गाथाओं को गाते हुए, शृंगारललित ललनाओं की रूप सुधा का पाठकों को पान करवाते हुए कालिदास ने आध्यात्मिकता की भी अवहेलना नहीं की। श्री अरविन्द ने ठीक ही कहा है कि यद्यपि कालिदास स्वयं नैतिकता के सूक्ष्मतर तत्वों से अनभिज्ञ था तथापि उन्होंने नैतिकता के क्षेत्र में प्रतिष्ठापित आचार-संहिता का अनुमोदन किया है और सराहना की है।

निष्कर्ष

श्री अरविन्द ने संस्कृत साहित्य के बहुमुल्य ग्रन्थों के अनुवाद तथा व्याख्यायें करके संस्कृत का गौरव बढ़ाया ही है पर इस के साथ-साथ उनकी अपनी मौलिक रचनाएं भी संस्कृत साहित्य के उन्हीं अमर तत्वों से अनुप्राणित हैं जिन्हें वैदिक ऋषियों ने रहस्यमय प्रतीकों के द्वारा अभिव्यक्त किया था। अतीत की गहराइयों में गहरी जड़ें जमाए हुए भावी विकास के विस्तृत नभ में शाखाएं फैलाए पल्लवित पुष्पित होता हुआ अरविन्द साहित्य हमें जो सन्देश देता है वही संस्कृत साहित्य की आत्मा का उद्घोष है।



जन मन के विकास पर निर्भर,
सामाजिक जीवन निश्चित,
संस्कृति का भूस्वर्ग अमर,
आत्मिक विकास पर अवलंबित।

—सुमित्रानन्दन पन्त

दुर्गा दत्त शास्त्री

※

श्री अरविन्द के प्रति

जोत जो तुम ने जलाई है जलेगी,
विश्व के घन अन्धतम को यह हरेगी।

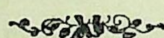
भव्य अभिनव चेतना के जन्म दाता,
अशुभ कलमष से जगत् के त्राणदाता,
सतत तेरी साधना का तेज अनुपम,
कोटि जन-जन के लिये है शान्ति दाता,
है उसे विश्वास पतझड़ दूर होगा,
तेरी करुणा बेलि अमृत फल फलेगी।
जोत जो तुम ने जलाई है जलेगी॥

हे महायोगिन्! तुम्हारा धन्य जीवन,
विश्व मानव! विश्वहित सेवा समर्पण,
जटिल जीवन प्रश्न अब तक थे निरुत्तर,
दूर कर दी सब की तुमने विकट उलझन,
हे महा पारस परस पाकर तुम्हारा,
लोह पाषाणी कुमति कुन्दन बनेगी।
जोत जो तुम ने जलाई है जलेगी॥

एक ही सत्तत्व है सब में समाया,
तुम ने बतलाया, नहीं कोई पराया,
हैं सभी दुःख द्वन्द्व रूढ़िग्रस्त को ही,
सब किसी को सुगम पथ तुम ने दिखाया,
अर्थ जीने का नहीं संघर्ष समझो,
यह समझने पर अरे बिगड़ी बनेगी।
जोत जो तुम ने जलाई है जलेगी।।

ईश की रंगस्थली के पात्र हैं हम,
श्रेष्ठ अभिनय यदि करें सम्मिलित हो हम,
तो अनेकों भ्रान्तियों के जाल सारे,
छिन्न होंगे, तब सुखी निर्द्वन्द्व हैं हम,
स्वार्थ-हिंसा-शक्तियां तब नष्ट होंगी,
मनुजता तब अमरता को ही वरेगी।
जोत जो तुम ने जलाई है जलेगी।।

सृष्टि के शृंगार हम हैं मनुज सुन्दर,
और यह पावन धरा पावन सरोवर,
हम खिलें इस में रहें यदि कमल जैसे,
और बिखराते रहें सौरभ निरन्तर,
तो शिला कठिन से हो कठिनतम भी,
वह हमारे पंथ से निश्चित टलेगी।
जोत जो तुम ने जलाई है जलेगी।।





डॉ० ओम प्रकाश गुप्त



अरविन्द के कविता-सम्बन्धी विचार

अरविन्द कवि और आलोचक बाद में थे, पहले थे— अध्यात्मवादी। काव्य-सत्य को उन्होंने ईश्वरीय सत्य से अलग नहीं माना। यहां वे प्लेटो की उस मान्यता से अलग जाते जान पड़ते हैं जिस के आधार पर प्लेटो, जो अरविन्द की भांति आदर्शवादी था, काव्य-सत्य को ईश्वरीय सत्य से अलग मानता था। वह कवि को अनुकर्त्ता तथा सत्य से तीन सोपान दूर मानता था। ईश्वर के प्रति उस की आस्था यह मानने के लिए कदापि तत्पर नहीं थी कि कवि प्रकृति की सही अनुकृति प्रस्तुत कर सकता है। प्लेटो की भांति अरविन्द भी कवि की अन्तः प्रेरणा को महत्व देते हैं। प्राप्त सिद्धि को ईश्वरीय प्रेरणा का फल मान लेना भारतीय दर्शन की विशेषता रही है इसी लिए जहां प्लेटो अन्तः प्रेरणा के कारण कवि को दीवाना या पगलाया हुआ कह कर उस की कृति की भर्त्सना करता है; वहां अरविन्द मानते हैं कि "अन्तः प्रेरणा का सार है—ज्ञान के आलोक की असाधारण सशक्तता।" कवि सामान्य मनुष्य से इस बात में अलग होता है कि उस की अनुभूति का फलक बहुत व्यापक तथा संवेदना अत्यधिक सजग होती है। कवि इतनी गहराई से महसूस करता है कि वह अपनी बात कहे बिना रह नहीं सकता। लेकिन, कवि की अनूभूति भौतिक प्रभावों से ही परिचालित होती है, अरविन्द ऐसा नहीं मानते। रूप-विधान की कामना या सौंदर्यबोध कला और कविता के 'कारण' होते हैं—ऐसा बहुत से आचार्य मानते हैं।

अरविन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भांति सभी पदार्थों में एक दैवी सौंदर्य के दर्शन करते हैं। वे कहते हैं—ईश्वर ही सौंदर्य है, वही आनन्द है; उच्चतम सौंदर्य की प्राप्ति ईश्वर की प्राप्ति है। वही अपरिमित एवं अपार सौंदर्य भिन्न-भिन्न पदार्थों में भिन्न-भिन्न मात्रा में प्रकट हुआ करता है। प्रत्येक वस्तु एक कोण से देखने पर सुन्दर प्रतीत होती है, विभिन्न धरातलों से विभिन्न पदार्थ कम या अधिक सुन्दर लगते हैं, किन्तु सुन्दरता उन में है—इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता, प्रत्येक भौतिक पदार्थ को एक धरातल पर नहीं लाया जा सकता। एक धरातल पर लाने का अभिप्राय होगा—सभी पदार्थों में निहित विराट सत्य के दर्शन करना, उस स्थिति में सभी विशृंखलताएं लुप्त हो जायेंगी, सभी विविधताएं समाप्त हो जायेंगी, सभी भौतिक सत्य एक शाश्वत एकक के रूप में दृष्टिगोचर होंगे। अरविन्द मानते हैं कि कविता में सत्य भी हो सकता है, सत्य की अनुकृतियां या रूप विधाएं भी हो सकती हैं, ये अनुकृतियां सही भी हो सकती हैं मूल से पूर्णतया अलग—कल्पना प्रसूत भी। किन्तु क्या रचना पूर्णतया कल्पनाश्रित अथवा यथार्थ से पूरी तरह विलग हो सकती है? इसी प्रकार क्या रचनाकार, सचमुच, उस निष्पक्षता को प्राप्त कर सकता है जिस का दावा प्रकृतिवादी साहित्यकार किया करते हैं! अरविन्द मानते हैं कि "पूरी तरह से निष्पक्ष हो पाना साहित्यकार के लिए सम्भव नहीं है। रचना के पात्रों का जीवन उस सिद्धांत द्वारा अनुप्राणित होता है जो रचनाकार के आंतरिक मानस में निहित होता है। ये पात्र वाह्य वस्तुओं की अनुकृति के रूप में नहीं रचे जा सकते।

कलागत सत्य को ईश्वरीय सत्य का पर्याय मानने वाले अरविन्द जीवन के महत्व को भी स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि कला जीवन की लयात्मक अभिव्यक्ति है। किन्तु जीवन से उनका तात्पर्य वाह्य जीवन से न होकर उस आंतरिक संचेतना से है जो जीवन की बाहरी प्रवृत्तियों का परिचालन करती है। मुखौटे के पीछे क्या है, भौतिक आवरण के नीचे क्या है—कवि को इस का उद्घाटन करना चाहिए। साथ ही, ऐसी निर्मिति के लिए जिसे कलात्मक संरचना की संज्ञा दी जा सके, केवल भाव पर्याप्त नहीं हैं। उस के लिए अनिवार्य है—जीवन की पृष्ठ-भूमि। विकल्प से यह भी कहा जा सकता है कि कवि के लिए अपेक्षित है ऐसा मन जिस ने बहुत कुछ देखा है, परखा है—या चाहिए उसे एक ऐसी आत्मा जो तपस्या में निरत रहती है और तपस्या के प्रति सचेतन भी।

एक व्यक्ति अर्थात् कवि के निजी जीवन की घटनाएं उसकी कविता में स्थान पाएँ या नहीं, इस विषय में अरविन्द का कथन है कि—देखना यह है कि निजी जीवन के अनुभव कहां तक कवि के मानसिक जीवन का सही रूपान्तर कहे जा सकते

हैं। कवि की दृष्टि सार्वभौमिक होती है, उसके अनुभव का धरातल लघु सीमाओं के घेरों से बाहर विराट पूर्ण के साथ एकाकार होता है। अपने में एक खण्ड हो कर भी वह उस अखण्ड का अभिन्न अंश होता है। कवि तो एक माध्यम है, एक रचनात्मक शक्ति उस का उपयोग भर करती है। यह शक्ति उन्हीं घटनाओं या अनुभवों की ओर ध्यान देती है, जो कवि के सीमित व्यक्तित्व की परिधि को लांघ सकते हैं।

कटे, बटे, टूटे व्यक्तित्व की चर्चा से घुट रहे आज के साहित्यिक सिद्धांतों द्वारा कुरेदे जाने वाले प्रश्नों के प्रति भी अरविन्द जागरूक थे, समाधान करते हुए उन्होंने कहा—यदि कवि का व्यक्तित्व बटा हुआ है, ऊपर से एक किन्तु भीतर से उस में अनेक व्यक्तित्वों का जमाव है तो उन अनेक व्यक्तित्वों से एक कवि या कलाकार होता है। अपना कार्य समाप्त करके यह व्यक्तित्व अवकाश ग्रहण कर लेता है और दूसरों को अपना काम करने देता है।

आज के साहित्य की अर्थ दुरूहता की समस्या से भी वे परिचित थे। स्वयं उनका काव्य रहस्यमय है जिस में प्रयुक्त प्रतीक असाधारण प्रतिभा सम्पन्न पाठक द्वारा ही समझे जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए वे कहते हैं—अर्थ को समझने का नहीं, अनुभव करने का यत्न करो। पुनः अरविन्द काव्य को बुद्धि का नहीं, भाव का विषय मानते हैं। यह बात और स्पष्ट होती है जब रस की परिभाषा करते हुए वे कहते हैं—रस एक प्रगाढ़ित स्वाद है, भावना का आध्यात्मिक सार है, कला का यह अनिवार्य तत्व, आत्मा को प्राप्त होने वाला वह आनन्द है जो अनुभूति के शुद्ध और पूर्ण साधन द्वारा ग्रहण होता है।

ज्ञान, सौन्दर्य और आनन्द में वे सौन्दर्य और आनन्द को वर्चस्व प्रदान करते हैं। सौन्दर्य और आनन्द की पुरातन आराधना की ओर लौटने से ही मानवता का कल्याण सम्भव है, उसी में हमारी मुक्ति निहित है। संगीत और काव्यकला आरम्भ से ही महानतम एवं गहनतम तत्वों की अभिव्यक्ति के प्रयास करते आये हैं—इनकी दृष्टि मात्र सतही नहीं होती. अरविंद मानते हैं कि कला सौन्दर्य की खोज एवं प्राप्ति का नाम है, कला का उद्देश्य सौन्दर्य को आकार देना और आनन्द प्रदान करना है। लेकिन आनन्द एक 'मूड' या भाव-प्रवाह में प्राप्त होने वाली प्रसन्नता नहीं, न ही यह वह अनुभूति है जो रूप के आकर्षण के कारण होती है। यह सचमुच ब्रह्मानन्द है क्योंकि उनके अनुसार विभिन्न प्रतीकों और रूपों में निहित सौन्दर्य और आनन्द ही ईश्वर है।

काव्य के उन्होंने निम्नलिखित अनिवार्य तत्व माने हैं—

१—भावात्मक ईमानदारी एवं कवि धर्मा अनुभूति।

२—भाषा एवं लयविधान पर पूरा अधिकार।

३—आन्तरिक प्रेरणा—संरचनात्मक शक्ति।

उनके विचार में कवि की सफलता के विभिन्न स्तर निर्धारित किए जा सकते हैं। इस दृष्टि से मूल्यांकन के लिए निम्नांकित विशेषताओं को ध्यान में रखना होगा— पर्याप्तता, प्रभविष्णुता, भाषा की तेजोमयता, आंतरिक प्रेरणा एवं अपरिहार्यता।

एक अन्य स्थान पर कविता के मूल तत्वों की चर्चा करते हुए वे निम्नलिखित तत्वों की ओर इंगित करते हैं :—

१ प्रेरणा का मूल स्रोत,

२ सौन्दर्य की प्रेरक शक्ति,

३ कवि की वाह्य चेतना जो अभिव्यक्ति के माध्यम की नियामक होती है।

कविता को जीवन की लयात्मक अभिव्यक्ति कहने वाले अरविन्द मानते हैं कि कविता के लिए लय-विधान और शब्द-संगीत अनिवार्य है। कविता एक कला है और कवि शब्द-संयोजन एवं लय-विधान में निपुण कलाकार होना ही चाहिए—हां, निःसन्देह उसे इस से कुछ अधिक भी होना चाहिए।

आधुनिक युगीन छन्द-हीन तथा लयहीन कविता उन्हें पसन्द नहीं थी। उन्होंने यह माना कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दावा लेकर स्वच्छन्द कविता लिखना बुरा नहीं किन्तु बहुत से लेखक इस प्रकार की रचना में ऐसा गद्य ही दे पाए हैं जो पंक्तियों में तोड़ दिया गया है और आधा तीतर-आधा बटेर बन कर रह गया है। नियमगत परम्पर से कवि विद्रोह करे, यह स्वाभाविक है क्योंकि प्रतिभा की एक प्रमुख प्रवृत्ति होती है कि वह पुरातन नियमों को तोड़ कर, उन्हें परिवर्तित करके नवीनता की स्थापना में विश्वास करती है। मानवीय विकास का सारा इतिहास प्रतिभा की इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। अरविंद मानते हैं कि निर्धारित सिद्धांत प्राय: आवश्यकता से अधिक कठोर होते हैं तथा कोई कारण नहीं है कि कवि अपनी आत्मा, व्यक्तित्व अथवा हृदय की अभिव्यक्ति ऐसे नियमों द्वारा कुंठित होने दे जिन की प्रकृति प्रायः "तुम ऐसा नहीं करोगे" जैसी वर्जनाओं के समान होती है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अरविंद जहां परम्परा का आदर करते हैं, काव्य सत्य को ईश्वरीय सत्य का पर्यायवाची मानते हैं, लयविधान को कविता का अनिवार्य तत्व समझते हैं, वहीं वे अकारण नव्य प्रवृत्तियों का विरोध भी नहीं करते।



डॉ० शान्ता शर्मा



सावित्री : एक परिचय

महर्षि अरविंद रचित 'सावित्री' महाकाव्य आधुनिक युग की एक महान देन है। कालिदासादि महान कवियों के समान अरविंद ने भी इस महान् काव्य का मूल-कथानक महाभारत से ही लिया है। इस लिये महाकाव्य निर्माण की पौराणिक परम्परा का पुर्ननिर्माण और स्थापना करने वाले अरविंद इस युग के महान् दार्शनिक साहित्यकार और महाकाव्य-निर्माता हैं। महर्षि की बहुमुखी प्रतिभा अनेक रूपों में व्यक्त और प्रसृत हुई है उन्होंने विभिन्न-क्षेत्रों में सक्रिय भाग लिया, देश के स्वातंत्र्य-संघर्ष में भी वे उतने ही प्रयत्नशील रहे जितने साहित्य और योग साधना के क्षेत्र में इस लिए कोई तो उन्हें दिव्य शक्ति सम्पन्न योगी, कोई संत, और कोई महान् देशभक्त समझता है। जबकि किसी की दृष्टि में वे अध्यापक या गुरु, प्रकांड विद्वान्, वेदों के व्याख्याता, जीवन और साहित्य के आलोचक गद्य कला के आचार्य नाटककार और प्रतिभा सम्पन्न कवि भी हैं। वास्तव में वे सभी कुछ थे और सभी की भूमिका को उन्होंने सफलतापूर्वक निभाया है। सावित्री नाम के महाग्रंथ की रचना उन्होंने आध्यात्मिक-विकास के प्रतीक के रूप में की, यौगिक-उन्नति की प्रक्रिया और विकास की सावित्री-सत्यवान की काव्य-कथा के रूप में अपनी दार्शनिक शैली में व्याख्या की, यह एक ऐसा अनुपम महाकाव्य है जिस में कवित्व-शक्ति की अभिव्यक्ति के साथ-साथ ईश्वरीय शक्ति और आध्यात्मिक-अनुभूति का रूप उभरता है, यौगिक-साधना और ईश्वरीय सत्ता में आस्था दोनों मानव को धीरे-धीरे पार्थिव

लोक से उठा कर ईश्वरीय-अनुभूति की ओर ले जाती हैं और इसी प्रक्रिया द्वारा मानव, जीवन के भेदभाव उतार-चढ़ाव नियति-मानव-भाग्यवाद आदि पर विजय पाने के लिए संघर्ष-रत रहता हुआ भौतिक स्तर से आध्यात्मिक-स्तर पर पहुंच जाता है । उसी प्रकार जैसे भक्ति और तपश्चर्या से सावित्री ने मृत्यु पर भी विजय पा ली।

प्रत्येक-भारतीय-सावित्री-सत्यवान् की कथा से परिचित होगा ही; मद्रदेश का राजा अश्वपति निःसंतान था । अतः संतान-प्राप्ति के लिए उसने लाख-होमों से सावित्री-देवता की उपासना की। अठारह वर्ष तक घोर तप किया, कठोर उपवास किये तो सावित्री ने प्रसन्न होकर राजा को संतान का वर दिया । उस के यहां सावित्री के समान ही तेजस्विनी कन्या का जन्म हुआ। राजा ने कृतकृत्य हो देवता के ही नाम पर बेटी का नामकरण—सावित्री कर दिया, बड़ी होने पर उस तेजस्विनी को अपने समान तेजस्वी वर न मिल सका। अश्वपति चिंतित रहने लगा पर सावित्री ने पिता की ही आज्ञा से साल्वदेश के राजा-द्युमत्सेन के बेटे सत्यवान् को पति वरण कर पिता को चिंता से निवृत्त तो कर दिया, पर नारद ने यह बता कर अश्वपति की चिंता को बढ़ा दिया कि सत्यवान एक वर्ष भर ही जी पायेगा। पर सावित्री उस की सम्भावित-मृत्यु से भी त्रस्त न हुई प्रत्युत् पूर्ण-निष्ठा और निश्चय के साथ सदैव के लिए सत्यवान् के साथ बंध गई। ब्याह के उत्सव और उल्लास से उल्लसित न हो कर उस ने पहले दिन से ही संयम-साधना सेवा और व्रत द्वारा मृत्यु के विरुद्ध व्यूहरचना प्रारम्भ कर दी और एक दिन भी सांसारिक खुशियों में नहीं रमी। शारीरिक और मानसिक तपस्या के कठोर क्षण उसके जीवन के अभिन्न अंग बन गये भौतिक-सुखों से मानों उस का सम्बन्ध ही न रहा और पति को मृत्यु के पाश से मुक्त कराने के लिए दृढ़ संकल्प हो अभिराम संघर्षरत हो उठी। आखिर वह अभागा दिन भी आ पहुंचा और उसी की गोद में सत्यवान का निर्जीव शरीर लुढ़क गया क्योंकि उस की आत्मा को यमराज बांध कर ले चला था। सावित्री सतर्क थी क्योंकि वर्ष भर से वह इसी क्षण की प्रतीक्षा करती रही था। सावित्री पति के शरीर को भूमि पर रख यमराज के पीछे भागी और अपनी चतुरता बुद्धिमत्ता और वाक्शक्ति से यमराज को पराजित कर उस से सौभाग्यवती रहने का वर मांग लिया और यमराम पराभूत हो गये। उन्हें अपनी वाणी को सत्य सिद्ध करने के लिए सत्यवान् के प्राण लौटाने पड़े, सावित्री की साधना सफल हुई सत्यवान् पुनः जीवित हो उठे और सावित्री को सौभाग्य प्राप्ति हुई। सावित्री सौभाग्य प्राप्ति का प्रतीक है इस लिए आज भी अधिकांश नारियां और कुंवारियां किसी विशेष रात्रि में सावित्री की पूजा करती हैं और इस देवी से अपने सुखद जीवन की

कामना करती हैं क्योंकि सावित्री सच्ची पत्नी और पातिव्रत्य शक्ति की प्रतीक है। इसी प्रतीक-शक्ति को अरविंद ने अपने महाकाव्य का आधार बनाया है। महाभारत में और भी सैंकड़ों आख्यान हैं पर महर्षि अरविंद ने इसी को चुना क्योंकि यही कथा उन के आध्यात्मिक सिद्धान्त के विकास के अनुकूल थी, इसी कथा को अपना साहित्यिक आधार मान कर वे आगे बढ़े, इसी अनोखे उपाख्यान पर चारुदत्त और रमेश दत्त भी लिखने का मोह संवरण नहीं कर सके थे, पर अरविंद ने इसी आख्यान पर बृहद आकार के महाकाव्य की रचना कर डाली, आश्चर्य होता है।

अरविंद के अनुसार सावित्री ऐसी शक्ति है जो किसी अनिष्ट या अमंगल का प्रतिकार अपने कल्याणसूचक शुभ तत्व से कर सकती है और सत्यवान सत्य का प्रतीक है जो सत्य शक्ति-युक्त होकर अजेय हो उठता है सौंदर्य प्रेम और भक्ति-भावना से सिद्ध होने वाली महामहिमामयी सावित्री सत्य या सत्यवान् के साथ रह कर दुर्जेय शक्तियों को भी नियंत्रित और पराभूत कर लेती है दूसरे शब्दों में मृत्यु को भी पराजित कर लेती है, इस शक्ति-यक्त सत्य का अनिष्ट कदापि और केनापि सम्भव नहीं, तभी तो यमराज की प्रबलतम और घोर शक्ति को भी सावित्री के समक्ष हार माननी पड़ी, अपनी तपस्या और संयम से सावित्री ने मृत्यु जैसी अवश्यम्भावी घटना को असत्य बनाकर रख दिया।

अरविंद का विश्वास था कि मानव का मानसिक-स्तर यौगिक साधना द्वारा ऊपर उठाया जा सकता है और इस से आत्मिकोन्नति की पूर्ण सम्भावना बनी रहती है और फिर ऐसी ही उन्नति द्वारा मानवीय-मानसिक-स्तर का एक महान् आत्मा में रूपान्तर हो जाता है। परीधियों में सीमित-मानव भौतिक-स्वभाव या प्रकृति, पराप्रकृति और पार्थिव-जीवन पर विजय, दिव्य या ईश्वरीय-जीवन द्वारा ही पाई जा सकती है। इसी लिए अपने इस आत्मिक-विकासवाद के दर्शन की व्याख्या हेतु उन्होंने इसी सावित्री-सत्यवान् के उपाख्यान को उपयुक्त समझा होगा और दार्शनिक प्रतिभा और अनूठी कल्पना-शक्ति के दिव्य-संयोग से इस महाकाव्य का निर्माण किया।

यह महाग्रंथ तीन भागों में विभक्त है, इसके बारह अध्याय और उनचास सर्ग तथा चौबीस हजार पंक्तियां हैं, तो भी यह अपूर्ण है, पर इसकी पूर्णता का बोध अध्येता को अध्ययन क्षणों में ही हो जाता है क्योंकि अध्येता मंत्रमुग्ध सा होकर इसकी काव्यात्मक पूर्णता से अभिभूत हो आत्मविस्मृत सा हो जाता है उसे ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ भी अनकहा नहीं रहा है या कोई भी सम्बद्ध विषय अरविंद ने अछूता नहीं रहने दिया है। पचास वर्षों की लम्बी अवधि में 'सावित्री' का पुनः पुनः निर्माण

होता रहा, साधना, कठोर तपश्चर्या और अनुभूति की कसौटी पर इसे बार बार कसा गया और अन्तः प्रेरणा के ज्वलन्त वैश्वानर द्वारा यह ग्रन्थ तब तक परिपाक सहता रहा जब तक इसने अपना महामहिम दिव्य बृहदाकार रूप ग्रहण न कर लिया, वास्तव में अरविंद महर्षि ने इस ग्रंथ को साधारण वर्णनात्मक शैली में रच कर दो भागों में विभक्त करने की योजना बना रखी थी। प्रथम भाग पृथ्वी पर किये गये दृश्य-कर्म और दूसरा भाग कर्मों की वासना या संस्कार-सहित परलोक में महा प्रयाण करने से सम्बद्ध था, पर अरविंद की अपनी वैरागिक अनुभूति इस महाग्रंथ को आध्यात्मिकता की चरम-सीमा की ऊंचाइयों तक ले गई और उन्हें पता भी नहीं चला।

भारतीय उच्च परम्परा का प्रतीक-योग-प्रत्येक भारतीय की निधि है। इसकी उपेक्षा और विस्मरण अशोभनीय और अशुभ है। इसी लिए महर्षि से सावित्री द्वारा यौगिक-परम्परा के पुनरुत्थान और प्रसार का उत्तरदायित्व उठाया। योग-साधना के क्षेत्र में क्रान्ति का आह्वान किया, जनमानस में आत्मिक उन्नति का दिव्य-सन्देश पहुंचाने का शुभ-कार्य आरम्भ किया। उनकी वैयक्तिक अनुभूतियों की 'सावित्री' एक पारदर्शी आदर्श बनती चली गयी। अरविंद ने अपने सुविस्तृत आध्यात्मिक-साम्राज्य में प्रतीकात्मक विधि द्वारा भौतिक-परिप्रेक्ष्य को अपने ही दार्शनिक-तत्वों का अभिन्न अंग बना लिया और सावित्री-सत्यवान् के रूपों में दर्शनात्मक-अनुभूति की अनेक-विध व्याख्या की।

महर्षि पुनः सावित्री और सत्यवान् दोनों को इस आत्मा का प्रतीक मानते हैं। यह आत्मा साधारण नहीं है क्योंकि यह सांसारिकता अथवा भौतिकता से ऊपर उठने और दिव्यता-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है। उस चरम-सत्य की अनुभूति इसका लक्ष्य है, यही अनुभूति मृत्यु से मुक्ति की प्रतीक है। सावित्री की कठोर साधना और संयम से अमरता की दीक्षा ले रही है। सत्यवान् के प्राणहर्ता की पराजय ही उसकी यौगिक सिद्धि का चरम-उत्कर्ष है। यही आत्मिक-विकास अरविन्द का सावित्री द्वारा प्रतीक है। इस महाकाव्य का प्रारम्भ सत्यवान् के मृत्यु-दिवस से होता है। सावित्री ने ब्याह के बाद का एक एक दिन महती विकलता दुश्चिंता और आंतरिक पीड़ा झेलते हुए बिताया था पर वह इन्हीं दिनों सुचेता और जागरूका रही थी, अततः अवसान की घड़ी आई, प्रभात हुआ औरों के लिये, सावित्री के लिए नहीं क्योंकि उसके लिए जीवन-मरण का दिन था, परन्तु यह अवसाद-पूर्ण प्रभात नवीन-सृष्टि और जीवन के इतिहास की प्रथम सुनहली उषा भी थी, एक वर्ष में सावित्री ने मृत्यु से जूझने के लिए आत्मिक-निष्ठा से शक्ति-संचय कर लिया था। अतः यह प्रभात सत्य या अग्नि-परीक्षा का भी था, अतः इसका विशेष महत्व था, इस अध्याय में सावित्री की अवस्था स्थिति और दैवी उद्भव को प्रस्तुत करते हुए अरविंद कहते हैं "व्यक्ति होकर भी

मृत्यु का सामना, सावित्री के रूप में, नश्वरता में, मानों अमरत्व के अंकुर फूट रहे थे, पार्थिव बन्धनों से बांधी जा कर भी वह इस परीक्षा की प्रतीक्षा अधीरता से कर रही थी क्योंकि यह यात्रा नश्वरता से अमरता, असारता से सारता और अनित्य से नित्य-सनातन की ओर ले जा रही थी, मानव हृदय में अन्तर्हित ईश्वरीय-तत्व मनुष्य-भाग्य या नियति से ऊंचा है, उस दिन सावित्री के समक्ष संघर्षों का संग्राम था उसे अनथक लड़ना था और दूसरे दिन प्रभात से पहले विजयी बनना था।

मृत्यु का प्रयोजन विकास और मोक्ष की गहराइयों के अन्वेषक मानव की राह में बाधा डालना है अतः सावित्री पर यह दायित्व था कि वह मृत्यु की संभावना को भी दूर खदेड़ और उच्छेद कर उस मूक-रात्रि में मानव-जीवन और जन्म की समस्या की गुत्थी सुलझाए। सावित्री एक व्यथित-चिन्तन पत्नी भी है और असह्य तथा भयावह संभाव्य-घटनाओं के भार से झुकी हुई महिमाशालिनी विश्वजननी भी। उस में मानवीय और दैवीय-तत्व परस्पर आलिंगनबद्ध हैं। उस में भौतिक और दिव्य-गुणों की एकता की अभिव्यक्ति हो रही है। अतः चिन्ता और स्वनियन्त्रण से वह भविष्य का सामना करती है। वह अज्ञान और मृत्यु का लोहा मान ले अथवा ईश्वर की अनुभूति की राह पर चलती रहे और मानव-जीवन के लिए अभिनीत अभिनय में हारे या जीते यह उसका संघर्ष था जो भाग्य के पासों के साथ फैंका गया।

आत्मिक-पूर्णता के लिए संघर्ष करता हुआ अश्वपति मुमुक्षु की स्थिति में एक विश्वात्मक अनुभूति के लिए प्राणपन से संघर्ष कर रहा है। वह भी एक महान् योगी है शायद अरविंद के समान या अरविंद का अपना ही प्रतीक। व्यक्तिगत रूप से वह आत्मिकपूर्णता के लिए प्रयत्न कर रहा है अतः वह योगीराज है। उसके दूसरे रूप के उत्कर्ष की अभिव्यक्ति मानवजाति का प्रतिनिधित्व करने में हो रही है इस रूप में वह अन्वेषण की संभावनाओं पर विजय और अन्तर्मन की समस्त परिधियों पर नियन्त्रण चाहता है परन्तु यह उसकी वैयक्तिक-उपलब्धि भी कही जा सकती है। अन्ततः स्वात्मा के लिए प्रयत्नशील होकर समस्त जड़-चेतन के लिए एक विश्वात्मक अनुभूति को पाने के लिए और नयी सृष्टि के लिए प्रयत्न करता है। एक मानसिक सत्ता के रूप में अश्वपति तब तक ऊंची उड़ान भरता रहता है जब तक उसकी आत्मा सद्योत्पन्न बन्धनों से मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेती और वह उस रहस्यमयी स्थिति में नहीं पहुंच जाता, अरविंद कहते हैं "तो उसकी आत्मा की अज्ञान से मुक्ति हुई उसकी मानसिक और दैहिक स्थितियां परिवर्तित हुईं, दिव्य आकाश से दिव्य-ज्ञान की सुवर्षा हुई, अन्तर्मन से ही एक नया ज्ञान फूटा और फैलता गया।" अरविंद के चिंतनानुसार मुक्तावस्था की स्थिति में मानव को समस्त वातावरण, दैहिक और मानसिक स्थिति में एक अनोखे परिवर्तन की अनुभूति होती है।

वह ब्रह्मांड की उत्पति और विकास की नई-नई लीला देखते हैं, भगवान् की लीला मिट्टी में उतरती है और मिट्टी दिव्यता में परिवर्तित होती दिखाई देती है, तभी विश्वात्मक-अस्तित्व का भेद खुल जाता है ''वह केवलात्मन् पूर्ण बन जाता है, उसका मानवीय अंश दिव्य बन उठता है इस प्रकार बन्धनमुक्त आत्मा का पूर्णरूपेण रूपान्तरीकरण हो जाता है तब यह उतार-चढ़ाव विकास और ह्रास का एकीकरण हो जाता है।

इन्हीं महान् ऊंचाइयों पर योग साधना और तप द्वारा पहुंच कर अश्वपति 'मां' से, विश्वजननी से, भाग्य के द्वार, नियति बन्धनों को तोड़ देने की दुहाई देते हैं तो दिव्य मां उत्तर देती है "ओ सत्वरगामी ! मैंने तुम्हारी पुकार सुन ली है किसी न किसी को सवातीत होकर लोह विधान तोड़ना पड़ेगा और आत्मिक-शक्ति से नियति के अभिशप्त दिवस को शुभ में परिवर्तित कर देना होगा वह दिव्य सौंदर्य स्वर्ग से अवतरित हो भूतल पर गमन करेगा। प्रसन्नता अपने बालों के बादलों की जाली में शयन करेगी, अमर प्रेम अपने स्वर्णिम पर फड़फड़ायेगा और मानव नश्वरता की परिधियों से बाहर आ जायेगा, अटल इच्छा शक्ति नियति को भी बदल डालेगी।"

इस दिव्यता के वरदान की प्राप्ति अश्वपति को कदाचित् सावित्री के रूप में होने वाली थी या सावित्री ने ही इस दिव्यता के रूप में अवतरित होना था, अश्वपति को दिए गये वरदान का क्षण आया, ज्योति का अवतरण हुआ, सावित्री की संज्ञा दी गई, उत्पत्ति, शैशव और विकास की स्थिति का सुन्दर विवरण कौमार्य से स्त्रीत्व की पूर्णता की ओर बढ़ने वाली सावित्री में अन्वेषण की प्रवृत्ति गहरी और असीम है, अतः उसके गतिशील-कदम उसे सत्यवान् की ओर ले जाते हैं। दोनों की भेंट होती है और वे विधि के विधान से परिचित हो उठते हैं।

उसका समर्पित जीवन ही पुष्प का प्रतीक है। वे दोनों एक-दूसरे में खो गये, कुछ क्षणों के लिए पुनः अपनी समाधिस्थ स्थिति से वियुक्त हो गए, एक नये अस्तित्व में, नव-जीवन और संसार में उन का प्रत्यागमन हुआ।

वह आनन्दित हो पिता के पास लौटती है वहीं नारद भी विराजमान हैं नारद भी विवाह सम्बन्धी समाचार से उल्लसित हो उठते हैं परन्तु वर के विषय में जानकर अवसन्न हो उठते हैं—क्योंकि सत्यवान् की आयु का एक ही वर्ष अवशेष था पर सावित्री पर जैसे कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा वह किंचित भी चिंतित न हो अविचलित होकर बोली, "हृदय ने एक ही बार चयन किया है। यह पुनः सम्भव नहीं। मौत के बन्धन हमारी देह को बांध सकते हैं आत्मा को नहीं—यदि मृत्यु उन्हें ले जाती है तो मुझे भी मरना आता है। नियति जो भी करना चाहे मुझ से कर ले

मैं मृत्यु से भी प्रबल और भाग्य से भी शक्तिशालिनी हूं मेरा प्रेम विश्व को भी पराजित कर देगा।"

मां कदाचित व्यवहारिक ज्ञान की प्रतीक है क्योंकि मां का व्यवहारिक-ज्ञान सावित्री के सामने निष्फल सिद्ध होता है। नारद को सावित्री की हठीली-प्रवृत्ति में चमत्कारिक और विलक्षण सम्भावनाओं की अनुभूति होती है इस लिए वे राजा और रानी को यह कह कर आश्वस्त करते हैं—"अन्ततः कल्याण होगा।"

सावित्री और कोई नहीं वह ब्रह्मांड के अद्भुत अन्तरिक्षीय संघर्ष का प्रतीक और मुक्ति की भूमिका निवाहने के हेतु पृथ्वी पर एक महिमामयी शक्ति अवतरित हुई है। "वह दिन अवश्य आएगा जब वह अकेली निःसहाय प्रलय तथा स्वनाश के भयावह कगार पर, समस्त विश्व की चिंताओं को अपने वक्ष में समेट कर, मानव की समस्त अभिलाषाओं को अपने एकमात्र हृदय में वहन करती हुई विजय पा लेगी या निराश हो उठेगी महाकाल के दुर्धर्ष सेतु को उसे अकेले ही पार करना होगी। वहां पूर्ण-विजय अथवा पूर्ण-पराजय दोनों की सम्भावना है।

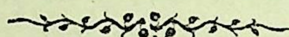
सावित्री महाकाव्य के आदि के अध्यायों में ही सत्यवान और सावित्री के ब्याह का उल्लेख है सावित्री की दाम्पत्य प्रेम सम्बन्धी प्रसन्नता सत्यवान की सत्वर गति से पहुंची हुई मृत्यु की सम्भावना से ग्रस्त हो उठती है क्योकि उसे मृत्यु का पूर्वज्ञान रहता है, सावित्री जो दैवी-मां का अवतार है एक ससीम मानवी नहीं उस की मानवीय-चेष्टाएं या प्रतिकियाएं उस की अव्यक्त दिव्यता को मिथ्या सिद्ध करने में असमर्थ हैं वह अश्वपति की यौगिक सिद्धि का फल है और वह स्वतः एक योगिनी बन जाती है क्योंकि उस में 'स्व' की जिज्ञासा है स्वशक्ति की पूर्ण-अनुभूति की अभिलाषा का जागरण है और आगामी विपत्ति का प्रतिरोध करने की सामर्थ्य। उसे शक्ति का संचय करना है अतः वह अन्तर्मुखी बन जाती है और मिथ्याभास के पर्दे चीरती हुई उस चरम-शिखर पर पहुंच जाती है यहां भ्रांति का अभाव है दिव्यता का साम्राज्य।

हम फिर उस भाग्यनिर्णायक दिवस की ओर मुड़ते हैं। सावित्री की यौगिक सामर्थ्य ने उसे दिव्यदृष्टि और शक्ति सम्पन्न बना दिया है। वह सत्यवान् के साथ जंगल जाती है और वह क्षण आ जाता है। सत्यवान् सावित्री का नाम पुकार कर निष्प्राण हो जाता है, "उसे ज्ञात था कि मृत्यु उसके पास खड़ी है और सत्यवान् उसके आलिंगन से अलग हो चुका है।"

अध्याय तीन में सत्यवान् की आत्मा को लेकर मन और सावित्री में संघर्ष चलता है दिव्य-ज्योति की प्राप्ति के निमित्त महान् दिवस पर बोधि-वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ को भी मार और उस की सेना के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा था। योशु ने

रेगिस्तान में शैतान पर काबू पाने के लिए संघर्ष किया था और जॉब ने अपने को मित्रों से सुरक्षित रखने का प्रयास किया था। सावित्री भी उसी सत्य परीक्षा से निकल रही थी और एक स्त्री और पत्नी होने के नाते यमराज के साथ जूझना उसके उच्चतम शिखर पर आरोहण का परिचायक है। उस की चरम-विजय का द्योतक है क्योंकि सावित्री की सच्ची आत्मिक-साधना से यमराज पराजित हो जाते हैं मृत्यु का गहन अन्धकार प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है। यह आत्मा को विशेषाधिकार है कि वह सही मार्ग-दर्शन करे, मृत्यु से त्रस्त जीवन की घड़ियों और निराशा की अन्धेरी गुफाओं से पार जाने के लिए संघर्ष करता हुआ परमानन्द की अनुभूति प्राप्त करे, जैसे सत्यवान, सावित्री के सहयोग से राज्यान्धकारवत मृत्यु के दुर्दम प्रहार को सह लेता है और दिवसीय प्रकाश को पा लेता है वैसे ही मानव की आत्मा भी ईश्वरीय अनुग्रह से अज्ञान की सीमाओं को पार कर मानसिक भेदभाव और विरोधों को विजित कर परम या दिव्य-सुख की अनुभूति पा लेती है। क्योंकि सावित्री और सत्यवान उस आत्मा के प्रतीक हैं जो सामान्य सांसारिक जीवन से उठ कर दिव्य-जीवन की अनुभूति के हेतु संघर्षशील हैं। पति-भक्ति के पथ पर आरूढ़ आत्मा ही मानों मृत्यु तत्व पर विजय पाकर, आत्म तत्व की प्राप्ति कर लेती है इस प्रकार अश्वपति भी विश्व के अस्तित्व के प्रतीक हैं। इन की तपस्या विश्व और मानवता के कल्याण के लिए है। मानव को भ्रान्तिओं के घूमते चक्र से मुक्ति दिला कर ईश्वरीय जीवन की अनुभूति की ऊंचाइयों तक उठा देना है।

इस प्रकार अरविंद ने सावित्री सत्यवान की कथा को प्रतीकात्मक-आध्यात्मिक-अभिव्यक्ति देकर नये आध्यात्मिक और दार्शनिक तत्वों की व्याख्या की।



कुलभूषण

※

सन्तुलन का अभाव और एक चोट

सुबह सात बजे इतमीनान के साथ नहा-धोकर, कपड़े बदल कर अरविंद ने स्टेशन की डॉरमिटरी में अपने पलंग के पीछे के बक्स में अपना सामान बंद किया। सिर्फ बिस्तर अंदर नहीं आ रहा था, उसे बगल में रख कर उसने अटेंडेंट को ताकीद की कि वह नाश्ता करके लौट रहा है, तब तक बिस्तर का ख्याल रखे और फिर वह स्टेशन के भवन से नीचे उतर गया।

अरविंद की गाड़ी ग्यारह बजे जाती थी, इस लिए उसके पास पर्याप्त समय था। बंगलौर शहर का सारा काम वह निबटा चुका था। बम्बई में सरकारी कमेटी उस का इंतजार कर रही थी। बगलौर शहर में कैम्पेगौड़ा सर्कल के आसपास सिनेमाघरों और दुकानों की चौंध उसके मानस पर एक हंसते-खेलते शहर की तसवीर छोड़ गई थी। इस शहर में जिन्दगी बिता देने का अगर उसे अवसर मिलता तो वह ऐसे अवसर को हाथ से जाने नहीं देता, यह निश्चित था। दिल्ली के बाद यह शहर घाव पर मरहम की तरह था। दिल्ली में जाड़ा हड्डियों को कड़कड़ा देता था, गर्मी चमड़ी को झुलसा कर भीतर तक का रस सोख लेने में सक्षम थी। मगर बंगलौर—लगभग ४०० वर्ष पहले कैम्पेगौड़ा द्वारा बसाये शहर की सीमा निर्धारित करने वाले 'लाल बाग' के आसपास बसा शहर—न गर्मियों में गर्म, न सर्दियों में रात के समय कंबल से ज्यादा जरूरत महसूस करने लायक, जंगलों से घिरा शहर है जहां बड़े शहरों की आवश्यकताएं महात्मा गांधी रोड़ पर और छोटे

कस्बाई शहरों की
में उपलब्ध हैं। एक
सिनेमाघर, बड़ी-
दुकानें, बैंकों और
और पैसा लगाने
निवासियों का
ईंट और पत्थर
चादरों की सूरत में
देता है। कुर्ग में
सारे भारत को
कुछ विदेशों को
निवासी दक्षिण के



जरूरतें सिटी मार्केट
ही सड़क पर २०-२५
बड़ी कपड़े की
कंपनियों के दफ़्तर
के लिए आतुर
विश्वास सिमेंट,
और शीशे की
चारों तरफ़ दिखाई
काफी की पैदावार
काफी देती है, और
भी। यहां के
मूल निवासियों में
अपेक्षाकृत कम श्यामवर्ण हैं। मेहनती भी हैं, और आलसी भी। सारे नगर में रेस्तरां ही रेस्तरां हैं जहां सुबह-दोपहर-शाम नाश्ते और खाने के लिए स्त्री-पुरुषों की भीड़ दिखाई देती है। खाना घर पर कौन बनाए जब बाहर कुछ ही अधिक देकर आसानी से खाया जा सकता है! पैसे की कमी नहीं है, इस लिए दुकानों पर खरीदारी भी की जा सकती है। समय अगर मुश्किल से कटता है तो सिनेमाघरों में कन्नड़ और हिन्दी और अंग्रेज़ी फिल्में देखी जा सकती हैं। आने-जाने में कठिनाई नहीं है, बसें भी हैं और ऑटो भी, जो और नगरों के मुकाबले में बहुत सस्ते हैं।

स्टेशन के बाहर गहराई में बने बस-अड्डे के पार, कैम्पेगौड़ा सर्कल के पास पहुंच कर अरविंद ने एक होटल में बैठ कर नाश्ता किया। फिर दुकानों के खुल जाने पर कुछ छोटी-मोटी चीज़ें ख़रीद कर वह स्टेशन की तरफ लौट चला। रास्ते में एक अखबार भी खरीद लिया, कि घण्टा दो घण्टे इंतज़ार के अच्छी तरह कट जाएं।

डॉरमिटरी में आकर वह पलंगों की पंक्तियों के बीच पड़ी बड़ी मेज के पास एक आराम-कुर्सी पर बैठ गया। अखबार खोल कर उसने एक नजर सुर्खियों पर डाली और फिर अरविंद को कुछ अजीब सा लगा। जब वह यहां से निकला था, तो बहुत से नौजवान वहां बैठे थे। दो-चार अधेड़ आदमी भी थे। मगर इस वक्त कुछ अजीब सफाई चारों तरफ दिखाई दे रही थी।

उसने अपने दो नम्बर के पलंग की तरफ देखा। फिर पलंग के पीछे उस की

नजर पड़ी। फिर नजर रुक गई। फिर एक सवाल उस की नजरों में उभर आया।

उस का होलडाल पलंग के पीछे, बक्स के बगल में नहीं था।

वह उठ कर उधर गया। पलंग के नीचे नजर दौड़ाई। बक्से के दाएं-बाएं, फिर लगभग बीस पलंगों पर उस की नजरें गुजर गईं।

उस का होलडाल कहीं भी नहीं था।

अरविंद के हाथ का अखबार कांप उठा। उसने अखबार तहाया। कुर्सी पर लौट कर उसने अपने छोटे अटैची में अखबार रख कर उसे बन्द कर दिया। फिर वह अटैची लिए दरवाजे की तरफ चल दिया।

होलडाल में उस का बिस्तर था। बिस्तर के बिना उस का बाकी का सफर कैसे कटेगा? अभी तो उसे बम्बई भी जाना है और राजकोट भी। बिस्तर के बिना तो सारा कार्यक्रम गड़बड़ा जाएगा। सफर के लिए उसके पास जो पैसा था, उस में से नया बिस्तर तैयार करना भी सम्भव नहीं था।

अरविंद डॉरमिटरी के दरवाजे की तरफ चला। फिर रुक कर उसने चारों तरफ देखा। बूढ़ा अटेंडेंट दरवाजे के बाहर गलियारे के एक ओर बैठा किसी से बातें कर रहा था। अरविंद उसके सामने पहुंच कर रुक गया। उसने अटेंडेंट की तरफ देखा—"सुनो!"

बूढ़ा उठ कर सामने आ गया।

"मेरा होलडाल? वह कहां गया गया?" अरविंद का स्वर तेज हो गया।

बूढ़ा अन्दर चल दिया। दो नम्बर के पलंग के पीछे पहुंच कर वह रुक गया। कुछ देर वह सोचता रहा।

"मैं तुम से कह गया था। बिस्तर बक्स में नहीं समा रहा था, इस लिए उसे बाहर छोड़ना पड़ा। नाश्ता करके लौटा हूं, तो होलडाल गायब है।"

"वह——लड़के——बहुत सारे लड़के थे साहब! वही ले गए होंगे। सारा सामान ले गए हैं वह!" बूढ़ा चुप हो गया।

"मेरा होलडाल क्यों ले गए?" मैंने कहा। "अपना बिस्तर ले गए होते, तो ठीक था। मगर मेरा बिस्तर? अपने होलडाल भी उन्हें पहचानने मुश्किल हैं?"

बूढ़ा फिर बोला—"एक ही तरीका है, हुजूर। सब के सब नौजवान यहां

टेस्ट के लिए आए हैं। आप आर० टी० ओ० के पास जाकर पूछिए। वह बताएगा कहां गए हैं वे सब !"

"कहां है आर० टी० ओ० ?" अरविंद अब सचमुच घबरा गया था।

"चलिए, मैं बताता हूं। नीचे ही है।"

बूढ़े के पीछे-पीछे अरविंद गलियारा लांघ गया। फिर जीना उतर कर दोनों नीचे स्टेशन के हाल में आ गए। वहां एक तरफ एक छोटे से कमरे में एक मिलिटरी का आदमी, खाकी वर्दी में, मेज के पीछे बैठा था। अरविंद ने अंग्रेजी में अपनी बात समझाई। "मैं डॉरमिटरी में ठहरा हूं। नाश्ते के लिए बाहर गया था। लौट कर आया तो मेरा होलडाल नदारद था। मुझे संदेह है, गलती से मेरा होलडाल वे नौजवान ले गए हैं जो यहां किसी टैस्ट के लिए आए हैं।"

"वे तो चले गए। सामान भी उनके साथ ही चला गया।" मिलिटरी के आदमी ने कहा।

अरविंद अपने क्रोध पर जबरन काबू किए रहा। अपनी आदत के अनुसार उसे अभी तक खूब उबल पड़ना चाहिए था। मगर होलडाल का मिलना बहुत लाजिमी था। "उन तक कैसे पहुंचा जा सकता है ?" उसने पूछा।

"कब्बन रोड़ पर एस० एस० बी० सेन्टर है, वहीं उन से मिला जा सकता है," उस आदमी ने कहा।

"कितनी दूर है यह जगह ?" अरविंद ने पूछा।

"यही, चार पांच किलोमीटर होगी। ऑटो में आप वहां जा सकते हैं।"

"फोन पर काम नहीं चलेगा ?"

"जी नहीं। आप का सामान वहां है कि नहीं, इस बात का पता कैसे चल सकता है।"

अरविंद ने कुछ देर सोचा। "आप पता मुझे लिख देंगे ?" उस ने आखिर कहा। मिलिटरी के आदमी ने एक चिट पर पता लिख कर अरविंद को पकड़ा दिया। स्टेशन के बाहर सड़क के पार ऑटो की लाइन में सिर्फ एक ही आटो खड़ी थी। अरविंद उस की तरफ लपका।

"कब्बन रोड़ चलोगे ?"

"खाली नहीं है।"

अरविंद ने इधर उधर देखा। सामने स्टेशन के भीतर आने वाले गेट से एक और ऑटो आता दिखाई दिया।

अरविंद अब पसीने में नहा रहा था। उस ने ऑटो की तरफ एक कदम बढ़ाया परन्तु दो और व्यक्ति उस में मुस्तैदी से बैठ गए थे।

कोई और ऑटो नहीं दिखाई दे रहा था। अरविंद ने कलाई घड़ी देखी। सवा नौ बजे थे, और ग्यारह बजे उस की गाड़ी बम्बई के लिए निकल जाती थी। अरविंद की आंखें अब जलने लगी थीं। कैसी मुसीबत में पड़ गया था वह! कितने उत्तरदायित्वहीन लोग हैं हमारे देश के!

अरविंद की आंखें किसी ऑटो की खोज में घूम रही थीं। एकाएक एक ऑटो सामने से आता दिखाई दिया।

अरविंद ने एक पैर आगे बढ़ाया। सब कुछ गड़बड़ा गया। उस का पैर, सड़क पर गाड़ियों के लिए बनी मेड़ से टकराया। फिर उस का सिर घूम गया और वह धड़ाम से मेड़ के उस पार सड़क पर आ रहा। मुस्तैदी से अरविंद ने अपने आप को उठाया। उठ कर उस ने अपनी पतलून पर लगी धूल झाड़ी। सफेद कमीज़ की कुहनी धूल से अट गई थी, उसे पोंछा। फिर अपनी हथेली पर उस की नज़र गई। रगड़ से हथेली के एक कोने पर खून की नन्हीं-नन्हीं बूंदें उभर आई थीं। उसने रूमाल निकाल कर हथेली पर रख दिया।

दो आदमी सामने से आ रहे थे। "हैलो!" एक ने अरविंद से कहा। "यहां कैसे आना हुआ?"

अरविंद ने कोशिश की कि कुछ याद आ जाए। मगर कुछ भी याद नहीं आया। उस की टांग पर आगे की हड्डी पर बेहद जलन हो रही थी।

"मैं आप से जयपुर में मिला था।" आगंतुक ने कहा। "प्लानर्स की कान्फरेन्स के मौके पर।"

"अरे हां, याद आया," अरविंद ने कहा। "आप यहां कैसे?"

"मैं यहीं रहता हूं।" उस आदमी ने कहा।

"स्टेशन से मेरा होलडाल गायब हो गया है। उसे ढूंढने कब्बन रोड जा रहा हूं।"

"कुछ देर रहेंगे क्या बंगलौर में?" एक औपचारिक सा प्रश्न।

"नहीं; आज ही बम्बई जा रहा हूं।"

'अच्छा, फिर मिलेंगे' वह आदमी अपने साथी के साथ खाली ऑटो में बैठ गया, जो अभी अभी आई थी।

अरविंद खड़ा का खड़ा रह गया। उसे उस परिचित व्यक्ति से कुछ आशा थी ऐसा उसने अनुभव किया। मगर कैसी आशा? वह उसकी क्या मदद कर सकता था? अपना काम छोड़ कर अरविंद की सहायता वह क्योंकर करता?

अरविंद कई मिनट तक वहां खड़ा रहा। आॅटो पाने की आशा समाप्तप्रायः हो गई, तो वह स्टेशन से बाहर की तरफ चल पड़ा।

स्टेशन के बाहर की सड़क के पार एक बहुत बड़ा गड्ढा है आठ-दस फुट नीचा और उस गड्ढे में एक तरफ बसों का एक अड्डा है। उस गड्ढे के बीचोंबीच स्टेशन से समकोण बना कर उतरती सड़क पर अरविंद आॅटो की तलाश में चल दिया। कब्बन रोड उसे जल्द से जल्द पहुंच जाना चाहिए। कब्बन रोड पहुंच कर, वहां से अपना होलडाल लेकर उसे स्टेशन पर वापस भी आना है और अब पौने दस बज रहे हैं।

एक आॅटो, दूसरा, आॅटो, तीसरा आॅटो। कम्बख्त कोई भी आॅटो वाला तैयार नहीं हुआ उधर जाने के लिए। आखिर जब एक राजी हुआ, तो अरविंद ने चैन की सांस ली।

आॅटो चल पड़ा। अरविंद के चेहरे पर, गर्दन पर, बगलों में पसीना आ रहा था जिसका एहसास उसे आॅटो में बैठने के बाद कुछ देर हवा के झोंकों का आनन्द लेने के बाद हुआ।

डॉरमिटरी में कल रात को जो लड़के थे, वे काफी सभ्य, सुसंस्कृत और शालीन थे। इन में से तीन चार को तो खूबसूरत की संज्ञा भी आसानी से दी जा सकती थी। अरविंद ने कल रात इस बारे में ज्यादा नहीं सोचा था, मगर अब उसे पता चला था। रात देर तक ताश खेलते लड़कों का समूह उसे कालेज के किसी छात्रावास में देखे दृश्य जैसा लगा था। सभी फौजी आॅफीसर बनने के उम्मीदवार थे। वह दो नंबर की शैय्या पर था, उसके साथ एक नंबर की शैय्या पर बैठा नौजवान रात को देर तक, और सुबह भी अरविंद के नहाने-धोने के वक्त तक एक मोटी-सी किताब पढ़ता रहा था। कैमिस्ट्री या फिजिक्स की किताब थी। उसे पढ़ते देखकर उस ने सिर्फ यही सोचा था कि यह नौजवान शायद किसी कम्पनी में नौकरी के लिए इंटरव्यू देने आया है। न उसने हिन्दोस्तान मशीन टूल्स की बात सोची थी, न हिन्दुस्तान ऐरोनाटिक्स की, न फौज की। इतने ढेर सारे होनहार नौजवानों के रात को डॉरीमटिरी में होने का भेद अब अरविंद पर खुला था। और वह भी किस अरुचिकर ढंग से।

दूर दूर बने बंगले। पेड़-पौधों से घिरे बाग, भवन, दुकानें, अनगिनत चौराहे। आॅटो का गेयर बदला जाना और उसकी मोटर की अनवरत घरघराहट। इस घरघराहट

के बीच अरविंद को अपने आप पर क्रोध आने लगा था। पैंतालीस-पचास की उम्र और इतनी घबराहट ? आखिर होलडाल ही तो खोया था। आफ़त तो नहीं आ गई थी। मेंड से टकराकर वह गिर क्यों गया था ?

इतने ढेर सारे नौजवान। उनके आगे जीवन के लम्बे रास्ते। अरमान और भविष्य की आशंकाओं से भरे युवा दिमाग।

अरविंद को अपने क्रोध को शांत करने के लिये उन नौजवानों का भविष्य नहीं बिगाड़ना है। ऐसा नहीं है कि वह उन का भविष्य बना या बिगाड़ सकता है, मगर यदि वह इस समय एस० एस० बी० सेन्टर में जाकर उन पर बिगड़ता है, तो उन में से किसी एक का, या उन में से कुछ का संतुलन बिगड़ सकता है। इससे उनका इंटरव्यू खराब होने की सम्भावना है और उन का इंटरव्यू लेने वालों में भी इन नौजवानों के प्रति कुछ विरोध-भावना पैदा हो सकती है।

अरविंद ने अपनी टांग पर लगी चोट पर उंगलियां फिराईं। हड्डी पर अभी भी दर्द हो रहा था। मगर ऐसा लगता था, इस चोट ने अपना काम कर दिया था।

वह ठीक से होकर बैठ गया। बंगलौर शहर उस के दोनों तरफ गुजर रहा था। आखिर बैरकनुमा भवनों के एक समूह के सामने एक गेट पर आकर ऑटो रुक गया। अरविंद ऑटो से उतरा। गेट पर, एक तरफ, एक वृक्ष की छाया में दो अर्दलीनुमा आदमी, खाकी निकर-कमीज पहने, एक बेंच पर बैठे थे।

"एस० एस० बी० सैंटर यही है ?"

एक अर्दली ने सिर हिला दिया, "हां, साहब।"

"यहां कुछ देर पहले कुछ लड़के आए हैं ? टैस्ट देने के लिए ?"

"हां, साहब"

"देखो......" अरविंद ने पूरी बात धीरे धीरे उन दोनों व्यक्तियों को बता दी।

"ऐसा कई बार हुआ है, साहब !" एक अर्दली ने कहा। "ये जवान लोग, साहब,......"

"तो मुझे अब अपना सामान देखने के लिए क्या करना होगा ?" अरविंद ने पूछा। "मेरे पास वक्त बहुत कम है। ग्यारह बजे की गाड़ी से मुझे बम्बई जाना है।"

"कर्नल साहब से मुलाकात कर लीजिए, साहब ! उनके ऑर्डर के बिना कुछ नहीं हो सकता।"

"उन से कहां मिलना होगा ?"

अरविंद को गेट के अन्दर एक बैरक दफ्तर के बाहर खड़ा करके अर्दली भीतर चला गया।

कर्नल हरियाना के एक जाट थे। खूब चुस्त, छः फुटे अधेड़। मेज़ के पीछे वह अकड़े बैठे थे। अर्दली की हिदायत के मुताबिक अरविंद ने उन्हें सैल्यूट किया। फिर सारी बात विस्तार से कह सुनाई।

"इस वक्त सब लोग टेस्ट दे रहे हैं," कर्नल ने कहा। उसके गेहुएं चेहरे पर अनुशासन की कठोरता थी, और वही कठोरता स्वर में भी। "एक बजे से पहले वे बाहर नहीं आ सकते।"

अरविंद को कर्नल ने बैठने के लिए भी नहीं कहा। वह मेज़ के सामने खड़ा रहा। "मेरी गाड़ी ग्यारह बजे निकल जाती है, उसने कहा। "मेरा फर्स्ट क्लास का रिजर्वेशन है। उसे कल के लिए बदलना भी सम्भव नहीं होगा। कुछ ऐसा कीजिए कि मैं......"

कर्नल ने अर्दली की तरफ देख कर कहा, "मैं मजबूर हूं......मगर पहले आप अपना सामान तो देख लें, है भी कि नहीं ?...... इन को ले जाकर सामान दिखा दो।"

अर्दली के संकेत पर अरविंद बाहर निकल आया। पच्चीस-पचास कदम चलने के बाद, दो-एक बैरकें लांघ कर वे एक बैरक के बरामदे में पहुंच गये जहां पच्चीस-तीस होलडाल-सूटकेस-हैंडबैग बिखरे पड़े थे।

अरविंद को दो मिनट भी नहीं लगे। सब से परे के होलडाल देखने के बाद जब उसने अपने नजदीक का सामान देखा तो पाया; उसके पैरों के पास ही उस का होलडाल पड़ा था।

"यही है मेरा होलडाल।" अरविंद ने कहा।

"ठीक है। चलिए।" अर्दली ने कहा। "आप गेट के बाहर बैठिए। मैं कोशिश करता हूं कि आप को आप का बिस्तर जल्दी मिल जाए।"

अरविंद ने अर्दली की तरफ देखा। होलडाल है, यह तो पक्का हो गया। अब वह होलडाल वक्त पर उसे दिया जाता है या नहीं, यह देखना है।

कुछ देर बाद अर्दली उसे उस तरफ ले गया, जहां अभ्यार्थी किसी कालेज के क्लास-रूम जैसे कमरे में बैठे थे। हर एक नौजवान के आगे और पीछे नम्बर लगे

कपड़े बंधे थे। प्लेटफार्म पर मेज के पीछे प्रोफेसर की जगह से एक इन्स्ट्रक्टर कुछ भाषण दे रहा था।

उसे देख कर इंस्ट्रक्टर रुक गया। फिर अर्दली के कुछ कहने पर वह बाहर आया। अरविंद से सारी बात सुन कर, उस ने उसे बाहर ठहरने का संकेत किया। फिर उस ने अभ्यर्थियों को सबोधित किया : "क्या आप सबके सामान के साथ एक ऐसा होलडाल आ गया है, जो आप में से किसी का नहीं है ?"

अभ्यर्थियों के चेहरे अरविंद नहीं देख सका, क्योंकि उनकी पीठ अरविंद की तरफ थी। सिर्फ दो मिनट बाद इंस्ट्रक्टर बाहर आया।

"खेद है, आपका होलडाल कोई नहीं लाया है।"

"अगर आप इजाजत दें, तो मैं कहूं, सामान के साथ मेरा होलडाल भी है। मैंने अपना होलडाल पहचान लिया है।"

"ठीक है !" इस्ट्रक्टर ने कहा। "आप कुछ देर इन्तजार कीजिये। मैं कोशिश करता हूं कि टैस्ट के बीच पांच मिनट का अवकाश देकर आपका काम करवा सकूं।"

"थैंक्स !" अरविंद ने कहा। उसकी निराशा उभरने लगी थी।

गेट के पास, पेड़ के नीचे, एक कुरसी पर अरविंद बैठ गया, जिस पर अर्दली बैठते थे। अनिश्चित और निश्चित के बीच एक निर्णय तो हो गया था। होलडाल वहीं था। डॉरमिटरी के अटेंडेंट का, और उसका अपना संदेह सही निकला था।

होलडाल मिलेगा या नहीं ? बंबई के लिए गाड़ी अरविन्द पकड़ सकेगा या नहीं ? इसका निर्णय होना बाकी था। अरविंद हर दो मिनट में अपनी कलाई की घड़ी पर नजर दौड़ा लेता था। नौ बज कर चालीस मिनट, नौ बयालीस, नौ पैंतालीस, नौ छयालीस, नौ इक्यावन......होलडाल यहां न होता, तो और बात थी, मगर वह जहां है, तो उसे छोड़ कर जाना कुछ उचित नहीं लगता। पता नहीं क्यों ?

एकांत और नीरवता। सड़क पर ऑटो या कार या ट्रक का गुजर जाना। किसी एक ऑफीसर का एक बैरक से दूसरी बैरक की तरफ जाना। किसी पेड़ पर एक चिड़िया की चहक। फिर नीरवता......।

नौ बजकर पचपन मिनट।

एकाएक एक नौजवान दिखाई दिया जिसकी छाती और पीठ पर नंबर का कपड़ा बंधा था। फिर दूसरा, फिर तीसरा। फिर ढेर सारे नौजवान बैरकों के बीच की सड़क पर भर गए।

अरविंद उठ कर खड़ा हो गया। घड़ी देखने की अब जरूरत नहीं थी। बस अर्दली के आने की देरी थी, और......।

सब नौजवानों के बाद अर्दली आता दिखाई दिया। वह लपक कर अरविंद के पास आया।

"उन से कहां मिलना होगा ?"

अरविंद को गेट के अन्दर एक बैरक दफ्तर के बाहर खड़ा करके अर्दली भीतर चला गया।

कर्नल हरियाना के एक जाट थे। खूब चुस्त, छः फुटे अधेड़। मेज़ के पीछे वह अकड़े बैठे थे। अर्दली की हिदायत के मुताबिक अरविंद ने उन्हें सैल्यूट किया। फिर सारी बात विस्तार से कह सुनाई।

"इस वक्त सब लोग टेस्ट दे रहे हैं," कर्नल ने कहा। उसके गेहुएं चेहरे पर अनुशासन की कठोरता थी, और वही कठोरता स्वर में भी। "एक बजे से पहले वे बाहर नहीं आ सकते।"

अरविंद को कर्नल ने बैठने के लिए भी नहीं कहा। वह मेज़ के सामने खड़ा रहा। "मेरी गाड़ी ग्यारह बजे निकल जाती है, उसने कहा। "मेरा फर्स्ट क्लास का रिजर्वेशन है। उसे कल के लिए बदलना भी सम्भव नहीं होगा। कुछ ऐसा कीजिए कि मैं......"

कर्नल ने अर्दली की तरफ देख कर कहा, "मैं मजबूर हूं......मगर पहले आप अपना सामान तो देख लें, है भी कि नहीं?...... इन को ले जाकर सामान दिखा दो।"

अर्दली के संकेत पर अरविंद बाहर निकल आया। पच्चीस-पचास कदम चलने के बाद, दो-एक बैरकें लांघ कर वे एक बैरक के बरामदे में पहुंच गये जहां पच्चीस-तीस होलडाल-सूटकेस-हैंडबैग बिखरे पड़े थे।

अरविंद को दो मिनट भी नहीं लगे। सब से परे के होलडाल देखने के बाद जब उसने अपने नजदीक का सामान देखा तो पाया; उसके पैरों के पास ही उस का होलडाल पड़ा था।

"यही है मेरा होलडाल।" अरविंद ने कहा।

"ठीक है। चलिए।" अर्दली ने कहा। "आप गेट के बाहर बैठिए। मैं कोशिश करता हूं कि आप को आप का बिस्तर जल्दी मिल जाए।"

अरविंद ने अर्दली की तरफ देखा। होलडाल है, यह तो पक्का हो गया। अब वह होलडाल वक्त पर उसे दिया जाता है या नहीं, यह देखना है।

कुछ देर बाद अर्दली उसे उस तरफ ले गया, जहां अभ्यार्थी किसी कालेज के क्लास-रूम जैसे कमरे में बैठे थे। हर एक नौजवान के आगे और पीछे नम्बर लगे

कपड़े बंधे थे। प्लेटफार्म पर मेज़ के पीछे प्रोफेसर की जगह से एक इन्स्ट्रक्टर कुछ भाषण दे रहा था।

उसे देख कर इंस्ट्रक्टर रुक गया। फिर अर्दली के कुछ कहने पर वह बाहर आया। अरविंद से सारी बात सुन कर, उस ने उसे बाहर ठहरने का संकेत किया। फिर उस ने अभ्यर्थियों को सबोधित किया : "क्या आप सबके सामान के साथ एक ऐसा होलडाल आ गया है, जो आप में से किसी का नहीं है ?"

अभ्यर्थियों के चेहरे अरविंद नहीं देख सका, क्योंकि उनकी पीठ अरविंद की तरफ थी। सिर्फ दो मिनट बाद इंस्ट्रक्टर बाहर आया।

"खेद है, आपका होलडाल कोई नहीं लाया है।"

"अगर आप इजाजत दें, तो मैं कहूं, सामान के साथ मेरा होलडाल भी है। मैंने अपना होलडाल पहचान लिया है।"

"ठीक है !" इस्ट्रक्टर ने कहा। "आप कुछ देर इन्तजार कीजिये। मैं कोशिश करता हूं कि टैस्ट के बीच पांच मिनटं का अवकाश देकर आपका काम करवा सकूं।"

"थैंक्स !" अरविंद ने कहा। उसकी निराशा उभरने लगी थी।

गेट के पास, पेड़ के नीचे, एक कुरसी पर अरविंद बैठ गया, जिस पर अर्दली बैठते थे। अनिश्चित और निश्चित के बीच एक निर्णय तो हो गया था। होलडाल वहीं था। डॉरमिटरी के अटेंडेंट का, और उसका अपना संदेह सही निकला था।

होलडाल मिलेगा या नहीं ? बंबई के लिए गाड़ी अरविन्द पकड़ सकेगा या नहीं ? इसका निर्णय होना बाकी था। अरविंद हर दो मिनट में अपनी कलाई की घड़ी पर नज़र दौड़ा लेता था। नौ बज कर चालीस मिनट, नौ बयालीस, नौ पैंतालीस, नौ छयालीस, नौ इक्यावन......होलडाल यहां न होता, तो और बात थी, मगर वह जहां है, तो उसे छोड़ कर जाना कुछ उचित नहीं लगता। पता नहीं क्यों ?

एकांत और नीरवता। सड़क पर ऑटो या कार या ट्रक का गुज़र जाना। किसी एक ऑफीसर का एक बैरक से दूसरी बैरक की तरफ जाना। किसी पेड़ पर एक चिड़िया की चहक। फिर नीरवता......।

नौ बजकर पचपन मिनट।

एकाएक एक नौजवान दिखाई दिया जिसकी छाती और पीठ पर नंबर का कपड़ा बंधा था। फिर दूसरा, फिर तीसरा। फिर ढेर सारे नौजवान बैरकों के बीच की सड़क पर भर गए।

अरविंद उठ कर खड़ा हो गया। घड़ी देखने की अब जरूरत नहीं थी। बस अर्दली के आने की देरी थी, और......।

सब नौजवानों के बाद अर्दली आता दिखाई दिया। वह लपक कर अरविंद के पास आया।

"उन से कहां मिलना होगा ?"

अरविंद को गेट के अन्दर एक बैरक दफ्तर के बाहर खड़ा करके अर्दली भीतर चला गया।

कर्नल हरियाना के एक जाट थे। खूब चुस्त, छः फुटे अधेड़। मेज के पीछे वह अकड़े बैठे थे। अर्दली की हिदायत के मुताबिक अरविंद ने उन्हें सैल्यूट किया। फिर सारी बात विस्तार से कह सुनाई।

"इस वक्त सब लोग टेस्ट दे रहे हैं," कर्नल ने कहा। उसके गेहुए चेहरे पर अनुशासन की कठोरता थी, और वही कठोरता स्वर में भी। "एक बजे से पहले वे बाहर नहीं आ सकते।"

अरविंद को कर्नल ने बैठने के लिए भी नहीं कहा। वह मेज के सामने खड़ा रहा। "मेरी गाड़ी ग्यारह बजे निकल जाती है, उसने कहा। "मेरा फर्स्ट क्लास का रिजर्वेशन है। उसे कल के लिए बदलना भी सम्भव नहीं होगा। कुछ ऐसा कीजिए कि मैं......"

कर्नल ने अर्दली की तरफ देख कर कहा, "मैं मजबूर हूं......मगर पहले आप अपना सामान तो देख लें, है भी कि नहीं ?...... इन को ले जाकर सामान दिखा दो।"

अर्दली के संकेत पर अरविंद बाहर निकल आया। पच्चीस-पचास कदम चलने के बाद, दो-एक बैरकें लांघ कर वे एक बैरक के बरामदे में पहुंच गये जहां पच्चीस-तीस होलडाल-सूटकेस-हैंडबैग बिखरे पड़े थे।

अरविंद को दो मिनट भी नहीं लगे। सब से परे के होलडाल देखने के बाद जब उसने अपने नजदीक का सामान देखा तो पाया; उसके पैरों के पास ही उस का होलडाल पड़ा था।

"यही है मेरा होलडाल।" अरविंद ने कहा।

"ठीक है। चलिए।" अर्दली ने कहा। "आप गेट के बाहर बैठिए। मैं कोशिश करता हूं कि आप को आप का बिस्तर जल्दी मिल जाए।"

अरविंद ने अर्दली की तरफ देखा। होलडाल है, यह तो पक्का हो गया। अब वह होलडाल वक्त पर उसे दिया जाता है या नहीं, यह देखना है।

कुछ देर बाद अर्दली उसे उस तरफ ले गया, जहां अभ्यार्थी किसी कालेज के क्लास-रूम जैसे कमरे में बैठे थे। हर एक नौजवान के आगे और पीछे नम्बर लगे

कपड़े बंधे थे। प्लेटफार्म पर मेज के पीछे प्रोफेसर की जगह से एक इन्स्ट्रक्टर कुछ भाषण दे रहा था।

उसे देख कर इंस्ट्रक्टर रुक गया। फिर अर्दली के कुछ कहने पर वह बाहर आया। अरविंद से सारी बात सुन कर, उस ने उसे बाहर ठहरने का संकेत किया। फिर उस ने अभ्यर्थियों को सबोधित किया : "क्या आप सबके सामान के साथ एक ऐसा होलडाल आ गया है, जो आप में से किसी का नहीं है ?"

अभ्यर्थियों के चेहरे अरविंद नहीं देख सका, क्योंकि उनकी पीठ अरविंद की तरफ थी। सिर्फ दो मिनट बाद इंस्ट्रक्टर बाहर आया।

"खेद है, आपका होलडाल कोई नहीं लाया है।"

"अगर आप इजाजत दें, तो मैं कहूं, सामान के साथ मेरा होलडाल भी है। मैंने अपना होलडाल पहचान लिया है।"

"ठीक है !" इस्ट्रक्टर ने कहा। "आप कुछ देर इन्तजार कीजिये। मैं कोशिश करता हूं कि टैस्ट के बीच पांच मिनटं का अवकाश देकर आपका काम करवा सकूं।"

"थैंक्स !" अरविंद ने कहा। उसकी निराशा उभरने लगी थी।

गेट के पास, पेड़ के नीचे, एक कुरसी पर अरविंद बैठ गया, जिस पर अर्दली बैठते थे। अनिश्चित और निश्चित के बीच एक निर्णय तो हो गया था। होलडाल वहीं था। डॉरमिटरी के अटेंडेंट का, और उसका अपना संदेह सही निकला था।

होलडाल मिलेगा या नहीं ? बंबई के लिए गाड़ी अरविन्द पकड़ सकेगा या नहीं ? इसका निर्णय होना बाकी था। अरविंद हर दो मिनट में अपनी कलाई की घड़ी पर नजर दौड़ा लेता था। नौ बज कर चालीस मिनट, नौ बयालीस, नौ पैंतालीस, नौ छयालीस, नौ इक्यावन......होलडाल यहां न होता, तो और बात थी, मगर वह जहां है, तो उसे छोड़ कर जाना कुछ उचित नहीं लगता। पता नहीं क्यों ?

एकांत और नीरवता। सड़क पर ऑटो या कार या ट्रक का गुजर जाना। किसी एक ऑफीसर का एक बैरक से दूसरी बैरक की तरफ जाना। किसी पेड़ पर एक चिड़िया की चहक। फिर नीरवता......।

नौ बजकर पचपन मिनट।

एकाएक एक नौजवान दिखाई दिया जिसकी छाती और पीठ पर नंबर का कपड़ा बंधा था। फिर दूसरा, फिर तीसरा। फिर ढेर सारे नौजवान बैरकों के बीच की सड़क पर भर गए।

अरविंद उठ कर खड़ा हो गया। घड़ी देखने की अब जरूरत नहीं थी। बस अर्दली के आने की देरी थी, और......।

सब नौजवानों के बाद अर्दली आता दिखाई दिया। वह लपक कर अरविंद के पास आया।

"चलिए साहब, अपना होलडाल बता कर पूछ लीजिये।"

अर्दली आगे आगे था, अरविंद पीछे पीछे। नौजवान सामान वाले बरामदे की तरफ तेज कदमों से बढ़ रहे थे।

अरविंद लगभग पन्द्रह-बीस कदम पीछे था। वह सीधा अपने होलडाल की तरफ बढ़ कर खड़ा हो गया।

उसके चारों ओर नौजवान थे। कुछ सोच में मग्न, कुछ अपने उतावले चिंतित मन को शांत करने के लिए गहरी सांसें लेते। कुछ साथियों से धीमे स्वर में बातें करते।

अरविंद ने किसी एक को संबोधित नहीं किया। आवाज कुछ ऊंची करके उसने पूछा : "यह होलडाल आप में से किसी का तो नहीं है?"

दो चार आवाजें "नहीं" की हवा में तिर आईं।

"तो फिर मैं इसे ले जा रहा हूं।" कह कर उसने होलडाल उठाया और अर्दली के हाथ में दे दिया।

"इसे जरा गेट तक पहुंचा दोगे?"

अरविंद नौजवानों की तरफ मुड़ गया। "थैंक्स! उसने कहा।" "जी नहीं!" किसी एक नौजवान ने कहा। "ग़लती तो हमारी थी। नाहक आपको कष्ट हुआ हमारी वजह से।"

अरविंद को यह आवाज नौजवान सच्चाई की आवाज की तरह लगी। अगर वह क्रोध करता, उन्हें कोसता तो शायद ये संवाद ऐसे मीठे न होते। शायद ......

वह उस आवाज की ओर मुड़ गया। एक खूबसूरत जवान चेहरा।

अरविंद ने चारों ओर के नौजवानों पर एक दौड़ती नजर डाली। गाड़ी का वक्त हो रहा था। इन नौजवानों के बीच वह अधिक देर नहीं रह सकता था।

"एनी वे, विश यू आल दि बैस्ट ऑव लक!" अरविंद ने कहा, "मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।"

"थैंक यू! थैंक यू! थैंक यू!" अनेक कण्ठों से मधुर आभार प्रदर्शन।

संतुलन का अभाव और चोट का कष्ट, दोनों अरविंद का साथ छोड़ चुके थे। वह इस नौजवान देश के चेहरों को, उनके निष्कपट सत्य को अपने भीतर महसूस करने लगा था।

होलडाल गायब होना कितना सार्थक रहा था। और यह सार्थकता होलडाल मिलने की नहीं थी। अरविंद ने कलाई की घड़ी की तरफ देखा। दस बज कर बीस मिनट हो चुके थे और उसे ग्यारह बजे की गाड़ी पकड़नी थी।



धर्म चन्द्र प्रशान्त

※

भारत की महान् विभूति अरविन्द

श्री अरविंद भारतवर्ष की महान् विभूति थे। वे ऐसा दीपक जला गये हैं जो शाश्वत है और प्रत्येक भारतीय के हृदय में जलता रहेगा। मैंने बाल्यावस्था में उनके सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना था। एक दो व्यक्ति ऐसे भी मिले जो उनके दर्शन कर चुके थे। उन का कहना था कि योगीराज के दर्शन के उपरान्त प्रत्येक के हृदय में परम उल्लास और आनन्द प्रस्फुटित होता है।

इस प्रकार की बातें सुन कर जी चाहता था कि उनके दर्शन किये जाएं परन्तु वह अभिलाषा पूर्ण नहीं हो सकी। आखिर यही विचार हुआ कि उन से साक्षात्कार नहीं हो सका तो उन का साहित्य ही पढ़ा जाए। कुछ लेख और ग्रंथ मिले परन्तु कुछ समझ नहीं आया। कारण, अरविंद ने अपने विचार अंग्रेजी या फ्रेंच भाषाओं में प्रकट किये हैं, फ्रेंच तो समझ के बाहिर की बात है परन्तु अंग्रेजी भी क्लिष्ट भाषा में है जो पढ़ी नहीं जा सकी। आखिर विचार ही छोड़ दिया।

एक दिन योगीराज के स्वर्गारोहण का समाचार मिला। अरविंद के विचार जानने की पुनः इच्छा जागृत हुई। भाषा की कठिनाई फिर सामने आई परन्तु थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त हो गया। गत वर्ष मुझे वाराणसी और दिल्ली में आयोजित अरविंद शताब्दि समारोह के सम्बन्ध में जम्मू से प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य के रूप में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। समारोह में बड़े धुरन्धर विद्वानों के विचार सुने। कुछ विद्वान तो

उनके सहवर्ती ही थे । कई बातें प्रकाश में आईं । जिन से पता चला कि उन्होंने भारत के राजनैतिक, क्रान्तिकारी, सामाजिक, साहित्यिक और दार्शनिक क्षेत्रों को नवीन ज्योति प्रदान की है ।

योगीराज १९०५ से १९१० तक राजनीति के क्षेत्र में रहे । उस समय उनके हृदय में देश की दासता को मिटाने का ही लक्ष्य था और उस को मिटाने के लिये उन्होंने जनता को जागृत करने के लिये प्रशंसनीय कार्य किया । यह मानी हुई बात है कि यदि वे राजनीति से संन्यास नहीं ले लेते तो उन का दर्जा सब से ऊपर होता और हो सकता है कि वे ही भारत के प्रथम कर्णधार कहलाते । परन्तु मातृभूमि उन की सेवा किसी और रूप में मांग रही थी और अन्त में वे उसी पथ पर चलते हुए इस नश्वर संसार को त्याग कर चले गये ।

योगीराज ने जनजागरण के लिये दर्शनशास्त्र का आश्रय लिया परन्तु दर्शन के कहने और लिखने का उनका ढग अपना और निराला था । अपने विचार प्रकट करने का तरीका उनका भारतीय आम पद्धति से भिन्न था । उन्होंने हिन्दू शास्त्रों, इतिहास और दर्शन का पूर्ण अध्ययन किया और उनका सारांश निकाल कर अपने विचारों में बांध कर प्रकट किया । उनकी लिखी एक एक पंक्ति महान् है, एक एक शब्द में चमत्कार भरा है ।

आज का युग वैज्ञानिक युग है । इस युग के विचारकों को हम प्राचीन पद्धति से कायल नहीं कर सकते । इसके लिए योगीराज ने दर्शन की नयी-नयी उपलब्धियां निकालीं, उन्हें परिपक्वता में भिगोया और जनता को ज्ञान तथा मोक्ष का मार्ग दिखलाया । उनका ढंग नया है जो वैज्ञानिक है और जिज्ञासु को वश में कर लेता है। उनके विचारों से हमारी विचारशक्ति और ज्ञान का भण्डार समृद्ध होता है ।

वे कहते हैं धर्म और विज्ञान का पथ विभिन्न है । धर्म का पथ सत्य तो है परन्तु कठिन है जिसके लिये घोर परिश्रम करना पड़ता है । धर्म पर पूर्ण आस्था के बिना आराध्य (ब्रह्म) को प्राप्त करना असम्भव है । अरविन्द ने ब्रह्मप्राप्ति के लिये जो मार्ग दर्शाया है उसमें आस्था और जिज्ञासा को एक माना है । दोनों अभिन्न हैं । अर्थात् जिज्ञासा के लिये आस्था का होना अनिवार्य है और इसके लिए उन्होंने बड़े सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं इतनी सुन्दरता से जिज्ञासा और आस्था का समीकरण शायद कोई ही दार्शनिक कर सका हो ।

दार्शनिकों का सिद्धान्त है कि ब्रह्म दृश्य भी है और अदृश्य भी । यह संसार भी दृश्य है और अदृश्य भी । इन्हीं दोनों को मिला कर उहोंने महान् कल्पना की है

जो संसार को नवीन देन है। कुछ मत ऐसे भी हैं जो ब्रह्म प्राप्ति अथवा मोक्ष पाने के लिये कठोर तपस्या का मार्ग बतलाते हैं। अपने शरीर का शोषण आवश्यक है, परन्तु अरविन्द ने ऐसा रास्ता नहीं चुना। वे इसके लिए ससार का त्याग आवश्यक नहीं समझते। शरीर सुखा कर इसे नाना प्रकार के कष्ट देकर मोक्ष नहीं मिलता। वह बड़ी सरलता से प्राप्त होता है।

अरविन्द मानसिक विकास के लिये सिद्धि को परम उच्च पद तक पहुंचाना जरूरी समझते हैं। वह हमारे जीवन का एक लक्ष्य है जिसे प्राप्त किये बिना ससार में लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता। सिद्धि का होना प्रत्येक लक्ष्य के लिये आवश्यक है। इसी को साधना समझ कर हम साधक बन सकते हैं।

अरविंद का ज्ञान सामान्य मनुष्य के काम आने वाला है और उस से उसे पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है। वही सिद्धि मनुष्य को जीवन के सब से उच्च स्तर पर ले जाती है। इसी सिद्धि को प्राप्त करवाना उनका परम लक्ष्य है।

आज का मनुष्य सामाजिक स्थितियों में जकड़ा है और इन स्थितियों के कारण उसके मार्ग में कई बाधाएं आती हैं। इसी विषय को लेकर उन्होंने सामाजिक स्थिति की विशेष रूप से व्याख्या की है और उसे परम लक्ष्य तक पहुंचने का साधन बतलाया है।

योगीराज अरविंद महान् विचारक और चिन्तक हैं उनकी विचार शक्ति और चिन्तन ब्रह्म दर्शन के लिये अर्पित है। उनका प्रत्येक क्षण और उस में प्रत्येक शब्द ज्ञान और मोक्ष प्राप्ति के लिये है।



उनके काव्य में कई विशेषतायें हैं। एक यह कि दार्शनिक होने के अतिरिक्त वे महान कवि हैं। योगी कवि नहीं होते कारण, कवि राग चाहता है और योगी वीत-राग है। अरविंद की कविता में जो वेग और व्यक्तित्व है, वह किसी अन्य साधक कवि की रचना में नहीं मिलता।

उनका महाकाव्य सावित्री है। इसकी महानता को सब ने माना है और

इसके साथ ही विस्मय यह है कि कोई इसकी गहराई तक जा नहीं पाया। इसमें मृत्यु और जीवन की होड़ दिखलायी गयी है। कविता का आशय सत्य और शिव है और उसे महान् दार्शनिक भाव से व्यक्त किया गया है। कविता का भाव हृदय की गहराई से निकलता है और वह मन के अन्दर जा छूता है।

अरविंद का कथन उच्च आध्यात्मिकता को लेकर चलता है। उन्होंने जहां जनता को आत्मज्ञान दिया है, वहीं भारतीय संस्कृति को शीशे की तरह सुलझाया है। संस्कृतियों की एकात्मकता ही उनका लक्ष्य रहा है। अरविंद का साहित्य भारतीय संस्कृति को अनुपम देन है। उन्होंने साहित्य की व्याख्या भी बड़े सुन्दर ढंग से की है।

उनका बतलाया हुआ पथ देव मार्ग है। उनके लिये आत्मा का स्थान सब से ऊपर है और वस्तु का बाद में। उन्होंने रामायण, महाभारत, वेद-वेदांगों का अच्छा मनन और अध्ययन किया है तथा उन्हें अपने विचारों में भी सूक्ष्मता से ढाला है।



नीलम खोसला



असमंजस

भूत और वर्तमान के
संघर्ष के मध्य मेरा जीवन
दीवार के जाले सा
लटक रहा है, और—
कीट सा मन,
भविष्य की खोज में
उलझ कर रह गया है।
कोलाहल और अट्टहास की
ध्वनियों के बीच खोई
मेरी श्रवण शक्ति
भविष्य के अनाहतनाद को
सुनने का प्रयत्न कर रही है
चाहे यह एक असफल दौड़ ही है...।
और यह नेत्र युगल
दूर—बहुत दूर
एक प्रकाश पुंज को देखने की
निरन्तर चेष्टा कर रहे हैं,

परन्तु—
निराशा की काली सी छाया
उस आकर्षण में भी
विकर्षण पैदा कर देती है।
उमंग की सुरभि—
घ्राण की ओर बढ़ती तो है
असफलताओं की सड़ांध
मानो दौड़ में पहल किये जा रही है।
मधु सी मीठी आकांक्षाओं का
आस्वादन करने को जिह्वा
आकुल सी बैठी है,
पर बाधाओं की कटुता ने
कसैलेपन को ही शाश्वत बना दिया है।
अतः द्वन्द्व में जकड़ा हृदय
आशा और निराशा के छोरों से बन्धा
कराह रहा है—कहां जाऊं, कैसे जाऊं ?



डॉ० देवराज बाली



श्री अरविन्द और मानव एकता का आदर्श

आधुनिक भारतीय चिन्तन के इतिहास में महायोगी श्री अरविंद का विशेष स्थान है। अपने सनातन चरित्र और दृष्टिकोण के कारण उन्होंने विश्व-चिन्तन में भी एक अद्वितीय स्थान प्राप्त किया। श्री अरविन्द की हम महात्मा गान्धी और टैगोर के साथ तुलना नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि गान्धी और टैगोर ने व्यापक रूप से अपने युग को प्रभावित किया तथा जनसाधारण में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाने में सफलता प्राप्त की। श्री अरविंद जनसाधारण को उतना प्रभावित नहीं कर सके फिर भी अपने विचारों के द्वारा मानव जाति के भविष्य के प्रति जो कल्पना इन्होंने की वह बहुत उत्साहवर्द्धक है। जीवन की विभिन्न समस्याओं के प्रति वास्तविक दृष्टिकोण रखते हुए उन्होंने इन समस्याओं के हल के लिए जो व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किये उस से आज के व्याकुल मानव को बहुत सहारा मिल सकता है।

अपने अध्यापन काल और बाद में कलकत्ता के राष्ट्रीय महाविद्यालय में प्रधानाध्यापक के रूप में श्री अरविंद ने अपने अन्दर इस इच्छा का अनुभव किया कि उनको मानवमात्र की भलाई के लिए कोई सार्थक कार्य करना चाहिये। इसी आंतरिक प्रेरणा के फलस्वरूप उन्होंने १९०५ में धर्मपत्नी मृनालिणी को लिखा "संसार में सुख की खोज करते हुए हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सुख की हर बात के पीछे दुख व्याप्त है। यह बात केवल अपने बच्चों के प्रति मोह और प्रेम में ही सत्य नहीं अपितु सांसारिक वस्तुओं की हर इच्छा में उचित जान पड़ती है।" इस प्रकार अपनी

अद्वितीय और असाधारण अभिलाषा के बारे में श्री अरविन्द बहुत पहले ही सचेत हो गए थे। अपनी राजनैतिक गतिविधियों के कारण, जिनका अन्त अलीपुर में १९०८ में 'अलीपुर षडयन्त्र काण्ड' के मुकदमे के साथ हुआ श्री अरविंद अपनी आंतरिक अभिलाषा को किसी प्रकार दबाये रहे। अपने संक्षिप्त कारावास काल में उन्होंने अपने भविष्य के कार्यक्रम पर विचार किया। इस प्रकार उन्होंने राजनीति के क्षेत्र को छोड़ कर अपनी व्यक्तिगत आध्यात्मिक उन्नति तथा मानव जाति की उन्नति के लिए शेष जीवन भर कार्य करने का निर्णय किया।

जीवन भर श्री अरविन्द ने मानव स्वतन्त्रता, मानव जाति की एकता और मानव के देवत्व के बारे में चिन्तन किया। अपने चिन्तन के काल में श्री अरविंद ने महसूस किया कि वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए मनुष्य का भविष्य सब से गम्भीर समस्या है। मानव की सब कठिनाइयों, समस्याओं और त्रुटियों का कारण उसकी अज्ञानता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में दो प्रकार के ज्ञान की बात कही गई है। प्रथम ज्ञान विद्या है जिसके द्वारा हमें अपनी आत्मा का बोध होता है और हम समझते हैं कि आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं। विद्या के विपरीत अविद्या है जो वास्तव में अज्ञान है जिस में बौद्धिक ज्ञान की सब बातें आ जाती हैं। श्री अरविंद के अनुसार अज्ञान व्यक्तिगत समस्या न हो कर एक सामूहिक समस्या है। सामूहिक अज्ञानता व्यक्तिगत अज्ञानता से बहुत भयानक होती है। हमारे पौराणिक ग्रन्थों में असुरों और राक्षसों की बहुत सी कहानियां पढ़ने को मिलती हैं। वे सामूहिक अज्ञानता के प्रतिनिधि थे। अज्ञानी मनुष्य अपने कर्मों के द्वारा कुछ लोगों को हानि पहुंचा सकता है। परन्तु जो देश अज्ञानता में लिथड़ा हुआ है, अपने अज्ञान के कारण असाधारण आकांक्षाओं को पूरा करने का प्रयास करता है, उसी के कारण संसार में युद्ध और उस के भयानक परिणाम देखने को मिलते हैं। सामूहिक अज्ञानता के विपरीत श्री अरविंद ने सामूहिक जीवन की बात की ताकि मानव की वर्तमान समस्याओं का उचित समाधान ढूंढा जा सके।

परिवार सामूहिक जीवन की सब से प्रारम्भिक इकाई है। इसके बाद समुदाय, कबीले, जातियां और राष्ट्र आये। राष्ट्र इस समय तक सामूहिक जीवन की सब से बड़ी इकाई है। हर एक राष्ट्र एक शक्ति का परिचायक है। इस शक्ति का पता राष्ट्रीय चेतना के रूप में देखने को मिलता है। इतिहास साक्षी है कि विश्व के विभिन्न भागों में इसी राष्ट्रीय चेतना के कारण विदेशी शासन के विरुद्ध लोगों ने आवाज उठाई और सारे एशिया-अफ्रीका में रह रहे करोड़ों नर-नारियों को नया जीवन मिला। आज हमें सामूहिक जीवन के द्वारा इस राष्ट्रीय चेतना का प्रयोग विभिन्न राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिये करना है। यह

तभी सम्भव है जबकि विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयां सामान्य लक्ष्यों के लिये संगठित हो जायें।

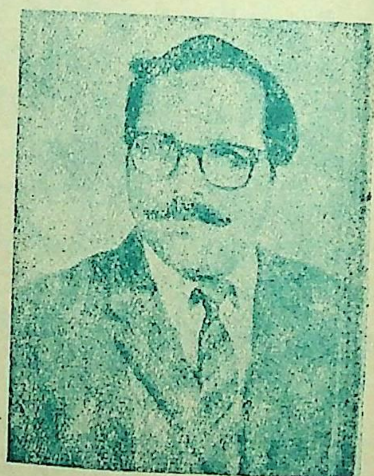
दो विश्व युद्धों तथा अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों के होते हुए भी मानव जाति की एकता के बारे में एक व्यापक रुचि देखने को मिलती है। सामूहिक जीवन की अब एक ही इकाई रह गई है जो हमें प्राप्त करनी है। यह इकाई है मानव जाति। इस लक्ष्य की प्राप्ति मानव की परिपूर्णता की ओर एक महत्वपूर्ण कदम होगा। इस सिलसिले में आज तीन बातें देखने को मिल रही हैं। विज्ञान के क्षेत्र में जो उन्नति हुई है उस से समय और स्थान का अन्तर कम हो गया है तथा मनुष्य-मनुष्य के बीच बाहरी रुकावटें दूर हो गई हैं। दूसरी ओर आर्थिक एकता के प्रति व्यापक मोह देखने को मिल रहा है। आर्थिक समस्यायें सारे संसार के सामूहिक जीवन का केन्द्रबिन्दु बन गई हैं। राष्ट्रों के बीच जितना आर्थिक लेन-देन आज देखने को मिल रहा है इतना इतिहास में पहले कभी देखने को नहीं मिला। आर्थिक एकता के लिये शान्ति की आवश्यकता है और शान्ति से मानव एकता के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। तीसरी बात यह है कि समाजवादी व्यवस्था पर आज बहुत जोर दिया जा रहा है। इस व्यवस्था का व्यावहारिक रूप सामूहिक जीवन में मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव जाति की एकता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इन तीन बाहरी साधनों का उपयोग किया जा सकता है।

श्री अरविंद के अनुसार यह आवश्यक है कि मानव जाति की एकता के लिए पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों के संयोग से विश्व के लिए एक सामान्य संस्कृति को जन्म दिया जाय। पश्चिम की शुद्ध भौतिक और बौद्धिक संस्कृति के आधार पर आने वाली पीढ़ियों के लिए कोई आशा नजर नहीं आती। भारतीय संस्कृति में मानव जाति की आध्यात्मिक एकता के द्वारा विश्वबन्धुत्व की बात हमेशा से कही गई है। भारत में धर्म, दर्शन, कला, साहित्य और समाज हमेशा मानव जाति की सेवा के लिए आत्मा के साधन माने गये हैं। श्री अरविंद के विचार में पश्चिम के विज्ञान और पूर्व के अध्यात्मवाद को भविष्य के लिये स्थिर आधार के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। उनको पूर्ण आशा थी कि बढ़ते हुए ज्ञान, जीवन की नई आकांक्षाओं तथा समस्याओं के प्रति न्यायिक दृष्टिकोण से, भविष्य में, निश्चय ही नये और अच्छे जीवन की प्राप्ति होगी। यह कहना गलत है कि इतिहास की पुनरावृत्ति होती है। विकास की प्रक्रिया एक निश्चित सत्य है और सामूहिक प्रयास से मानव की पूर्णता तथा अच्छे भविष्य को हम आसानी से प्राप्त कर सकेंगे।

इस स्थान पर श्री अरविंद के विकास के सिद्धान्त की ओर संकेत करना लाभदायक होगा। उनके अनुसार पदार्थ और आत्मा में कोई विरोध नहीं है।

विकास की प्रक्रिया में पदार्थ में आत्मा का प्रकट होना निश्चित है। श्री अरविंद के अनुसार भारतीय चिन्तन में व्यक्ति को विकास का आधार मान कर उसके व्यापक पक्ष की ओर ध्यान नहीं दिया गया। इसके विपरीत पश्चिम में भौतिक और बौद्धिक आधार मान कर विकास के आध्यात्मिक पक्ष को कोई महत्व नहीं दिया गया। मानव जाति के भविष्य को लक्षित करके हमें दोनों दृष्टिकोणों की सही बातों को मान लेना चाहिये। विकास की सच्चाई को हम भौतिक और भाववादी सिद्धान्तों के द्वारा नहीं समझ सकते। श्री अरविंद का विकास के प्रति दृष्टिकोण आध्यात्मवादी और मानववादी सिद्धान्तों पर आधारित है। विकास का आध्यात्मिक दर्शन इस विश्वास पर निर्भर करता है कि आत्मा विकास और निर्माण का उद्‌गम है। श्री अरविंद के अनुसार यह कहना गलत है कि भौतिक जगत माया है। सत्य तो यह है कि इसी जगत में विकास की निरन्तर प्रक्रिया के द्वारा आत्मा परमसत्य के रूप में अपने को प्रकट करती है। अपने अज्ञान के कारण मनुष्य अपने अन्दर दैवीय तत्व को समझ नहीं पाता। श्री अरविंद के आध्यात्मिक विकास का अर्थ यही है कि अज्ञानपूर्ण जीवन को दैवीय जीवन में परिवर्तित करना ताकि आत्मा सत्य के प्रति सचेत हो जाये। आध्यात्मिक रूप से परिवर्तित मनुष्य ही समस्त संसार के जीवन को अपना सकता है। इसी के द्वारा उस में मानव मात्र के लिए सद्‌भावना प्रेम और श्रद्धा का संचार होता है। सांसारिक जीवन में सुधार लाकर श्री अरविंद इस संसार को जीवन के योग्य उचित स्थान बनाना चाहते थे। मनुष्य का शारीरिक और मानसिक रूप में विकास मानवता के सतत् उत्थान के लिये मार्ग प्रशस्त करता है।

विज्ञान के क्षेत्र में मनुष्य की महान उपलब्धियों के कारण मनुष्य का मन बहुत परेशान हो गया है। विज्ञान के कारण भौतिक अर्थों में मानवता का जीवन एक हो गया है। परन्तु मानसिक और आध्यात्मिक पक्ष को लिया जाय तो आज व्यक्तियों, समुदायों और राष्ट्रों में विचार संघर्ष पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गया है। श्री अरविंद के अनुसार विकास की प्रक्रिया का लक्ष्य तभी पूरा हो सकता है जबकि उसके द्वारा मन और जीवन को विश्व रूप की ओर प्रेरणा मिले। वर्तमान परिस्थितियों पर काबू पाने के लिए हमें अपना सम्बन्ध सत्य और आत्मा के साथ बढ़ाना चाहिये।



श्री अरविंद ने कहा कि जब मनुष्य आध्यात्मिक मुक्ति की ओर अग्रसर होता है तो अपने आप ही उसी आध्यात्मिक एकता की ओर भी प्रगति होनी शुरू हो जाती है। आध्यात्मिक रूप से विकसित मनुष्य स्वतः ही मानव मात्र की भलाई की बात सोचता है। इसी लिए श्री अरविंद ने सामूहिक जीवन और मानव जाति की एकता के लिए मनुष्य के आध्यात्मिक विकास पर बहुत बल दिया है।

मनुष्य के सांसारिक जीवन में सुधार करके दैवीय जीवन की सम्भावनाओं को बढ़ाना अरविंद के दर्शन की सब से महत्वपूर्ण विशेषता है। उनके अनुसार समाज का यह लक्ष्य होना चाहिये कि वह ऐसी परिस्थितियां पैदा करे जिन में हर आदमी को अपनी क्षमता के अनुसार विकास करने का समान अवसर मिल सके। यह उनका दृढ़ विश्वास था कि सतत् प्रयत्न के द्वारा हर मनष्य अपने शारीरिक और मानसिक व्यक्तित्व में परिवर्तन करके आध्यात्मिक और दैवीय व्यक्तित्व को प्राप्त कर सकता है। आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया में विज्ञान और तर्क बहुत कम सहायक हो सकते हैं। इस में कोई शक नहीं कि विज्ञान ने एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया है जिस में दानवीय मनोवृत्ति के लौटने की सम्भावना समाप्त हो गई है। पर इसके साथ एक दूसरे प्रकार की दानवीयता बढ़ी है जिसको हम औद्योगिक, व्यावसायिक और आर्थिक दानवीयता कहते हैं। विज्ञान ने परस्पर विरोधी परिस्थितियों को जन्म दिया है। एक ओर तार्किक मानववाद को बढ़ावा मिला है तो दूसरी ओर लक्ष्यहीन शक्तिवाद तथा शक्ति की बेहूदा कामना को प्रोत्साहन मिला है। मानव जाति की एकता के लक्ष्य के लिए यह आवश्यक है हम विज्ञान का शुद्धिकरण करके उसको मानव के आध्यात्मिक विकास के लिए प्रयोग में लाएं।

श्री अरविंद के अनुसार व्यक्तिवाद और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के बीच आजकल एक संघर्ष चल रहा है। जब तक मानव समस्याओं के प्रति हम एक व्यापक दृष्टिकोण नहीं अपनाते मानव जाति का भविष्य अनिश्चित ही रहेगा। नैतिक मूल्यों के बिना केवल आर्थिक, राजनैतिक तथा सैनिक हिंसा के बल पर स्थिर एकता असम्भव है। मानव जाति के विकास का क्रम व्यक्तियों, जातियों और मानवमात्र के बीच सम्बन्धों को सतत् पुष्ट करना है। यह तीनों पक्ष दूसरे पक्षों से सम्बन्ध रख कर अपनी उन्नति करना चाहते हैं। मानव जाति के विकास का अर्थ है व्यक्तियों, जातियों और राष्ट्रों का विकास। परन्तु इस प्रक्रिया में हमें आपसी संघर्ष से बचने का प्रयास करना चाहिये।

मानव एकता के आदर्श को प्राप्त करने के लिए हमें एक ऐसे समाज का निर्माण करना होगा जिस में स्वतन्त्रता, समानता और भाई-चारे की भावना को सब से अधिक महत्व मिल सके। सही मानों में अभी तक हम एक भी लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सके हैं। स्वतन्त्रता की बहुत बात की जा रही है पर मानव को जो कुछ भी स्वतन्त्रता मिली है

वह केवल बाहरी है। इसी तरह आधुनिक युग में समानता भी एक आम नारा है। हम जो कुछ भी समानता ला सके हैं वह केवल कागजी है क्योंकि व्यवहार में आज भी मनुष्य मनुष्य के बीच खाइयां बनी हुई हैं। जब तक हम व्यक्तिगत और सामूहिक अहं को नहीं त्याग देते यह लक्ष्य हम प्राप्त नहीं कर सकते। सही भाई-चारे की भावना आत्मा में निहित है और आत्मा के द्वारा ही सम्भव है। यही कारण है कि श्री अरविंद ने आध्यात्मिक पक्ष पर बहुत जोर दिया है। आध्यात्मिक एकता के ऊपर ही स्वतन्त्रता, समानता और विश्वबधुत्व के लक्ष्य निर्भर करते हैं।

आध्यात्मिक एकता के लिये यह आवश्यक है कि हम कुछ ऐसे व्यक्तियों को सामने लायें जो अपने निजी हितों का समाज के हित के लिये बलिदान कर सकें। इस के साथ हमें एक ऐसे समाज के निर्माण का प्रयास करना होगा जिस में हर व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार पूर्ण विकास का समान अवसर मिल सके। इस प्रकार आध्यात्मिक एकता का अर्थ होगा व्यक्ति और समाज के आपसी सम्बन्धों में आध्यात्मिक परिवर्तन के प्रति रुचि का पैदा होना। तभी आर्थिक और यान्त्रिक व्यवस्था के होते हुए भी हम मानव एकता की आशा कर सकते हैं। आदर्श और मानव की पूर्णता एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

मानव जाति की एकता के सन्दर्भ में श्री अरविंद ने स्वतन्त्र सामुदायीकरण की बात की है। एकता जीवन का महान सिद्धान्त है जबकि स्वतन्त्रता उसकी आधारशिला है। आज जब हम राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कठिनाईयो में उलझे हुए हैं, स्वतन्त्र सामुदायीकरण में कठिनाइयां आ सकती हैं। परन्तु हमें इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिये। श्री अरविंद के अनुसार "युद्ध का बहिष्कार और सब व्यक्तियों के समान अधिकारों के सिद्धान्त में घनिष्ठ सम्बन्ध है।" अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें आत्मनिर्णय के अधिकार को मान्यता देनी होगी। हमें एक ऐसी व्यवस्था के लिए प्रयत्न करना होगा जिस में आपसी मेल-मिलाप तथा भाई-चारे की भावना बढ़े और मिल कर समस्याओं को हल किया जा सके। यदि सब लोग मिल कर प्रयास करें तो हमारा भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल बन सकता है।

मानव के सामुदायीकरण, जिसकी बात पहले की जा चुकी है, के विषय में श्री अरविंद ने कहा है कि मानव जाति के रूप में उसकी अन्तिम इकाई का लक्ष्य हमें अभी प्राप्त करना है। परन्तु इस के लिए भी शक्ति का प्रयोग हमें नहीं करना होगा। स्वतन्त्र राष्ट्रों के एक विश्वसंघ की स्थापना से हमारा लक्ष्य पूरा हो जायेगा। न्याय और समानता के आधार पर यदि विश्व के सब देश एक दूसरे की स्वतन्त्रता और प्रभुसत्ता का आदर करने लग जायें तो जिन कठिनाइयों का हम सामना कर रहे हैं वे दूर हो सकती हैं।

शुद्ध मानववादी व्याख्या देते हुए श्री अरविंद ने कहा कि मानव समस्याओं के समाधान के लिए केवल विश्व संघ का विचार ही काफी नहीं है। उन्होंने उन साधनों की ओर भी संकेत किया जिनकी सहायता से ऐसे राज्य को सुरक्षित रखा जा सके। सब से पहले हमें अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस की व्यवस्था करनी होगी जो अपराधों का निरीक्षण करे। इसके साथ ही अपराधों की रोक-थाम के लिए कारगर साधनों का प्रयोग करना होगा। अन्त में भ्रष्ट मनुष्यों को शिक्षा के द्वारा बदलने की व्यवस्था करनी होगी।

श्री अरविंद संकीर्ण राष्ट्रीयता के विरोधी थे। सामान्य मानवीय भावना के आधार पर उन्होंने मनुष्य को मनुष्य के सामने प्रस्तुत किया। जब तक हम व्यक्तिगत और राष्ट्रीय हितों को अधिक महत्व देते रहेंगे मानव एकता के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते। भविष्य में हमारी आशायें मानव धर्म के विकास के ऊपर निर्भर करती हैं। मनुष्यमात्र ईश्वर का रूप है, अतः मनुष्यमात्र की सेवा ही सच्चा धर्म है। सब प्राणियों में एक ही आत्मा व्याप्त है और इस सत्य से विश्वबन्धुत्व की भावना को महान बल मिल सकता है।

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि श्री अरविन्द का दृष्टिकोण अद्वितीय और विशाल था। उन्होंने पलायनवादी दर्शन और व्यक्तिगत मोक्ष की बात न करके मानव जाति का हित करने में महान योगदान दिया है। समाज सुधारकों और समाजसुधार की गतिविधियों के बावजूद संसार में गरीबी, बीमारी, अज्ञानता, भ्रष्टाचार, शोषण और अन्य बहुत सी बुराइयां बनी हुई हैं। समस्त बुराइयों को दूर करने के लिए श्री अरविंद ने मानव प्रकृति में परिवर्तन पर जोर दिया। मनुष्य अपने भाग्य का विधाता है, उसमें पूर्ण विकास की क्षमता है। मनुष्य में पुनः विश्वास पैदा करने के लिए श्री अरविंद ने जो कुछ किया उसके लिए मानव जाति उनकी हमेशा आभारी रहेगी। पदार्थ, मन और जीवन के परिवर्तन के द्वारा समस्त मानवमात्र के दैवीयकरण की जो बात श्री अरविंद ने की वह मानव चिन्तन के इतिहास में एकदम नयी कही जा सकती है। उनके द्वारा दिखाया गया मार्ग कठिन तो अवश्य है परन्तु उसके द्वारा स्थायी शान्ति, सुख और मानव की उन्नति की कल्पना को साकार किया जा सकता है।



चमन लाल सपरू



क्रान्तिकारी अरविन्द

योगीराज अरविंद; जिन्हें प्रायः मनीषी, दार्शनिक या कवि समझा जाता है, मूलतः एक क्रान्तिकारी थे। वे न केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही क्रान्तिकारी के रूप में प्रकट हुए अपितु उन्होंने वर्तमान युग में आध्यात्मिक क्षेत्र में भी क्रान्तिकारी विचार दिए। राजनैतिक क्षेत्र में उन का क्रान्तिकारी योगदान इतिहास की एक स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य घटना है।

श्री अरविंद का जन्म बंगाल के हुगली ज़िले में हुआ था। इसी ज़िले में भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत राजा राम मोहन राय और श्री राम कृष्ण परमहंस का जन्म हुआ था। इन के पिता डॉ० कृष्णधन घोष, जो विलायत से एम० डी० पास करके आए थे, बंगाल के प्रसिद्ध चिकित्सक थे। वे अंग्रेजियत के भक्त थे। उन्हें क्या मालूम था कि दार्जिलिंग के कान्वेंट में पढ़ाने और विलायत से उच्च शिक्षा प्राप्त कराने के उपरान्त भी उन का बेटा अरविंद अंग्रेजियत और अंग्रेजी शासन का प्रबल विरोधी बनेगा। बीस वर्ष की आयु तक श्री अरविंद भारतीय भाषाओं से अनभिज्ञ केवल अंग्रेज़ी बोलते और समझते थे किन्तु जिस व्यक्ति को भारतीय संस्कारों से इतना दूर रखने की चेष्टा की गई वही अन्ततः भारतीय विचारधारा का एक प्रमुख प्रचारक एवं क्रान्तिकारी देशभक्त बना।

वास्तव में श्री अरविंद की राजनैतिक शिक्षा का प्रारम्भ विद्यार्थी जीवन से ही हुआ। उन के पिता उन्हें 'बंगाली' नामक अंग्रेज़ी अखबार भेजा करते थे। इस में

भारतीयों पर किये जाने वाले अंग्रेजों के दुर्व्यवहारों के समाचार भी छपते थे। इन सब घटनाओं का प्रभाव श्री अरविंद के किशोर मन पर जमता गया। उन्होंने कैम्ब्रिज में "भारतीय मजलिस" नामक संस्था की सदस्यता स्वीकार कर ली। वे स्वयं कुछ समय तक इस के मंत्री भी रहे। इस के मंच से श्री अरविंद प्रायः क्रान्तिकारी भाषण दिया करते थे। ये भाषण उन को आई० सी० एस० से अलग कराने का एक कारण बने। सरकार की दृष्टि में वे बुरी तरह खटकने लग गए थे।

लन्दन में कुछ भारतीय विद्यार्थियों ने "कमल और कटार" के नाम से एक रोमांचकारी संस्था स्थापित की, श्री अरविंद अपने भाईयों सहित (जो इन के साथ ही लन्दन में पढ़ते थे) इस संस्था के सदस्य बने। इस क्रान्तिकारी संगठन के नवयुवक सदस्यों ने प्रतिज्ञा की थी कि वे भारत की स्वाधीनता के लिए अपने जीवन की बाज़ी लगाएंगे।

बड़ौदा में शिक्षक पद पर कार्य करते हुए श्री अरविंद अपने विद्यार्थियों में अत्यन्त लोकप्रिय हुए। श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के शब्दों में—"तब मैं मैट्रिक पास करके बड़ौदा कालिज में भर्ती हुआ ही था। वहां श्री अरविंद का नाम और प्रताप इतना अधिक था कि मेरा मन उनके प्रति आदर से भर गया। जब वे हमें अंग्रेजी पढ़ाते थे तब मैं आतंक से उनके शब्दों को सुना करता था। बाद में हम उन की यौगिक साधना की कहानियां सुन कर स्फूर्ति ग्रहण करते रहे। उनके द्वारा सम्पादित 'वन्दे मातरम्' भी हमें वर्षों तक बहुत प्रेरणा देता रहा। सूरत कांग्रेस में, जहां हम लोग उग्रपंथी नेताओं के शिविर में वालंटियर का काम करते थे, हम उन की उपस्थिति से बहुत उत्साहित और प्रभावित होते रहे।

बड़ौदा में रहते हुए श्री अरविंद ने सक्रिय राजनीति में भाग लेना आरम्भ कर दिया था। वह गोखले की अपेक्षा तिलक के अधिक समीप थे। उन के विचार उग्र तथा क्रान्तिकारी थे। मराठी के 'इन्दु-प्रकाश' में उन्होंने एक लेखमाला आरम्भ की। परन्तु पहले दो लेखों से ही ऐसी सनसनी फैल गई कि रानाडे आदि नरमदलीय कांग्रेसी नेता भयभीत हो उठे। रानाडे ने पत्र को चेतावनी दी कि यदि ऐसे ही लेख छपते रहे तो राजद्रोह का मुकद्दमा चल सकता है।

वास्तव में उस समय भारत का वातावरण किसी भी राजनीतिक आंदोलन के लिए उपयुक्त नहीं था। श्री अरविंद ने इस तथ्य को समझा और गुप्त रूप से जनता को इसके लिए तैयार करने की योजना बनाई। उन का अनुमान था कि लगभग ३० वर्षों में इस प्रकार बढ़ते हुए स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है।

इस के लिए कॉलिज के अवकाश के दिनों में उन्होंने स्वयं पहले बंगाल की यात्रा की तथा मिदनापुर आदि स्थानों पर गुप्त समितियों की स्थापना की, फिर उन्होंने जतीन्द्र बनर्जी नामक एक तरुण सैनिक को अपने प्रतिनिधि के रूप में बंगाल भेजा। विचार यह था कि सारे बंगाल में केन्द्र स्थापित किए जायें तथा विभिन्न आवरणों और बहानों से स्वयसेवकों की भरती और क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार किया जाए।

शीघ्र ही इस योजना का फल प्रकट होने लगा। केन्द्र बनने लगे और युवकों को व्यायाम कवायद, घुड़सवारी आदि की शिक्षा दी जाने लगी। इसी बीच श्री अरविंद ने पश्चिमी भारत की एक गुप्त संस्था से सम्बन्ध स्थापित किया तथा उसकी शपथ भी ग्रहण की। उनकी प्रेरणा पर उनके बंगाली क्रान्तिकारी मित्रों ने भी यह शपथ ली।

श्री अरविंद ने अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में तिलक से भेंट की। वे तिलक को ही क्रांतिदल का सम्भव नेता मानते थे। वहां तिलक उन्हें पंडाल से बाहर ले गए और मैदान में एक घण्टे तक बातचीत करते रहे।

इन्हीं दिनों स्वामी विवेकानन्द की विलायती शिष्या भगिनी निवेदिता से भी श्री अरविन्द की भेंट हुई। वह बड़ौदा व्याख्यान देने के लिए आयी थीं और श्री अरविंद उन्हें लेने स्टेशन पर गए थे। भगिनी निवेदिता भारतीय स्वतंत्रता के आंदोलन में बहुत रुचि लेती थीं। बंगाल के क्रान्तिकारियों को उनका सहयोग तथा शुभकामनाएं प्राप्त होती रहती थीं। बड़ौदा में हुआ उनका यह परिचय तब बहुत फलदायी सिद्ध हुआ। जब श्री अरविंद वापस बंगाल गए और उन्होंने क्रांति के संगठन में सीधे भाग लिया।

अपने अनुज बारीन्द्र कुमार को भी श्री अरविंद ने क्रान्ति में दीक्षित कर लिया। अब उन्होंने जतीन्द्र की सहायता करने के लिए बारीन्द्र को कलकत्ता भेज दिया। बारीन्द्र ने श्री अरविंद की सहायता से "भवानी मन्दिर" नामक क्रान्ति की योजना बनाई और एक पुस्तक भी तैयार की।

बारीन्द्र के प्रस्ताव पर श्री अरविंद ने 'युगान्तर' नामक एक पत्र भी आरम्भ किया। स्वामी विवेकानन्द के भाई भी इसके उपसम्पादकों में थे। जब पत्र की तलाशी ली गई तब उन्होंने स्वयं को सम्पादक कह कर पकड़वा दिया।

इस समय श्री अरविंद बड़ौदा छोड़ कर स्थायी रूप से कलकत्ता आ गए थे। यहां राजा सुबोध चन्द्र मल्लिक के दान से 'नेशनल-कॉलेज' की स्थापना हुई थी, जिसके वह प्रिंसिपल नियुक्त हुए।

सुप्रसिद्ध बंगाली नेता विपिनचन्द्र पाल 'वन्दे मातरम्' के नाम से एक दैनिक पत्र आरम्भ करना चाहते थे। परन्तु उनके पास केवल ५०० रुपये थे और भविष्य में सहायता का कोई आश्वासन भी नहीं था। उन्होंने इस साहसिक कार्य में सहयोग देने के लिए श्री अरविंद से कहा और वह तुरन्त इस कार्य के लिए तैयार हो गए। श्री अरविंद ने देखा कि उन्हें अब अपने क्रान्तिकारी विचारों एव योजनाओं का प्रचार करने के लिए उपयुक्त अवसर मिलेगा। उन्होंने कांग्रेस के अनुगामी दल के युवकों को नई पार्टी के रूप में संगठित किया और उन्हें प्रेरणा दी कि वे 'वन्दे मातरम्' को अपनी पार्टी का पत्र बना लें।

श्री अरविंद ने प्रकट रूप में यह घोषित किया कि पूर्ण स्वतंत्रता ही भारत के राजनैतिक आन्दोलन का लक्ष्य है। नई पार्टी ने अपने आदर्श को व्यक्त करने के लिए (स्वराज्य) शब्द को अपनाया, जो कांग्रेस द्वारा बहुत समय बाद, कराची अधिवेशन के अवसर पर स्वीकार किया गया। इस पार्टी ने अपने कार्यक्रम के अन्तर्गत असहयोग निष्क्रिय प्रतिरोध स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा आदि को लिया। उन दिनों सर्वश्री श्याम सुन्दर चक्रवर्ती, हेमेन्द्र घोष, विजय चटर्जी जैसे लेखक 'वन्दे मातरम्' को प्राप्त थे, जिसके कारण वह भारत में सभी स्थानों पर जाने लगा। 'स्टेटस्मैन' के एक सम्पादक ने यह शिकायत की थी कि इस पत्र की प्रत्येक पंक्ति से स्पष्ट रूप में राजद्रोह की तीव्र गंध आती है, परन्तु वह इतनी चतुराई से लिखी होती है कि कोई कानूनी कार्यवाही उस पर नहीं की जा सकती।

३० अप्रैल १९०८ को एक घटना घटी जिसने श्री अरविंद का जीवन ही बदल दिया। यह मानिक-तल्ला-बम-केस के नाम से प्रख्यात है, जिसमें खुदीराम बोस और प्रफुल्लचाकी ने किंग्सफोर्ड को मारने का असफल प्रयत्न किया था। २ मई को बारीन्द्र तथा श्री अरविंद को बन्दी बना लिया गया। इन्हीं दिनों श्री अरविंद 'नवशक्ति' नामक बंगाली दैनिक का कार्य अपने ऊपर लेने की तैयारी कर रहे थे। अलीपुर जेल में वे लगभग एक वर्ष रहे।

श्री अरविंद ने ४ अप्रैल १९१० को पांडीचरी पहुंच कर अपने जीवन का वास्तविक कार्य आरम्भ किया। उन्होंने राजनैतिक जीवन को तिलांजलि दे दी और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने में संलग्न हो गए, फिर भी १९३० में लोकमान्य तिलक ने एक विशेष दूत भेज कर कहलाया कि वे कांग्रेस का नेतृत्व ग्रहण करें। नागपुर के कांग्रेस-अधिवेशन पर भी डॉ० मुंजे ने स्वयं पांडीचरी आ कर उन से सभापति बनने की प्रार्थना की थी।

राजनैतिक क्षेत्र में श्री अरविंद ने बहुत थोड़े वर्षों के लिए काम किया, किन्तु

इसी अल्प समय में सम्पूर्ण राष्ट्र उनके क्रान्तिकारी लेखों, निर्भीक नेतृत्व और विप्लवकारी विचारधारा को पाकर उनको पूजने लगा। उनके निर्भीक लेखों से प्रभावित हो कर देशभक्ति के मतवाले तेजस्वी युवकों की एक नयी पीढ़ी तैयार हो गयी।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम को तीव्र बनाने के लिए श्री अरविन्द राजनीति में कूद पड़े थे, किन्तु विश्वमानवता के उद्धार के लिए योग साधना में लग गए। श्री अरविंद का कथन था कि 'ये सारे आंदोलन, ये सारी क्रांतियां, ये सारी लड़ाइयां केवल पैबन्द हैं, असली काम यह है कि मानवता को कोई नया वस्त्र दिया जाए। मानवता का नया वस्त्र अर्थात् मनुष्य का सम्पूर्ण रूपान्तरण।



लेखकों से अनुरोध

★ रचना कागज़ के एक ओर टाईप की हुई या साफ-साफ लिखी हुई होनी चाहिए।

★ प्रत्येक रचना के साथ रचना के अप्रकाशित एवं मौलिक होने का प्रमाण-पत्र अवश्य संलग्न करें।

जितेन्द्र ऊधमपुरी



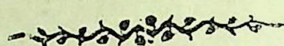
आवाज़

तुम,
मेरा गला दबा कर
मार दोगे मुझे !
मैं, मरूंगा नहीं,
मैं मरूगा नहीं;
अपनी आवाज़ से
शब्दों के ताने-वाने से
युगों-युगों तक
पहचाना जाऊंगा ।
तुम्हारे चाहने पर भी
मैं मिटूंगा नहीं
मेरा वध सम्भव नहीं ।

× × ×

लोग
मेरी कल्पना कर
मेरे रूप घड़ेंगे,
मेरे गीतों की सरगम में

डूब डूब जायेंगे,
वेदना भरे सागर में
खोजेंगे मुझे।
और फिर——
मेरी आवाज़
आ-आ कर
थिरक-थिरक कर
नाचेगी
हर सूक्ष्म जिह्वा पर,
क्योंकि——
आवाज़ मरती नहीं
पतझड़ के पत्तों सी
झड़ती नहीं।



जगदीश प्रसाद द्विवेदी

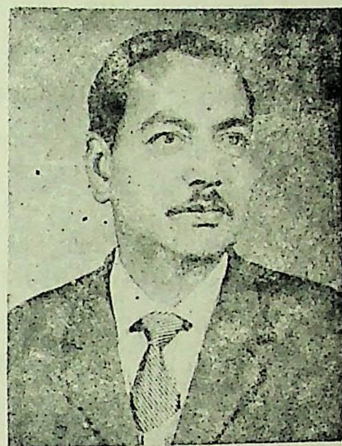


योगीराज श्री अरविन्द

भारत की महान विभूति योगीराज श्री अरविंद का नाम लेते ही हमारे मस्तिष्क के कल्पनापटल पर एक शान्त, सौम्य, सात्विक महान योगी का, एक आध्यात्मिक सन्त का चित्र उभरता है। जिसने विज्ञान की चकाचौंध और भौतिकता से ग्रस्त मानवता को भारतीय आध्यात्मिकता का अमृत पिलाया, निराशा और अन्धकार में भटकती हुई संसार की जनता को भारतीय अध्यात्म का प्रकाश दिया, मत मतान्तर दल, सम्प्रदाय, वर्ग और सड़ी गली रूढ़ियों के जंगल में भ्रमित विश्व के नर-नारियों को भारतीय संस्कृति व दर्शन का सीधा और सरल मार्ग दिखाया। उन्होंने जय घोष किया कि "तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय।" यह देख कर आश्चर्य होता है कि संसार में भारतीय अध्यात्म की दुन्दुभि बजाने वाले, भारतीय योग का शंखनाद करने वाले, विश्व में भारतीय संस्कृति व सभ्यता की शहनाई बजाने वाले श्री अरविंद को अपनी आयु के इक्कीस वर्षों तक यह भी ज्ञात नहीं था कि भारतीय आध्यात्मिकता क्या है ? भारतीय योग किसे कहते हैं ? भारतीय सभ्यता व संस्कृति का क, ख, ग, क्या है ? उन्हें यह भी पता नहीं था कि "कर्मण्येव अधिकारस्ते" किस पुस्तक में लिखा हुआ है अथवा रामायण किसने लिखी है और राजा दशरथ किस के पिता थे। उन्हें किसी भी भारतीय भाषा का ज्ञान नहीं था, यहां तक कि अपनी मातृभाषा बंगाली तक नहीं आती थी। अपनी आयु के इक्कीस वर्षों तक श्री अरविंद का शरीर हिन्दुस्तानी था लेकिन दिल और दिमाग अंग्रेजी। उनका रहन सहन,

बोल-चाल, खान-पान, वेशभूशा, हंसना रोना समस्त व्यवहार अंग्रेजी थे। यहां तक कि अपने एक अध्यापक श्री एक्रोयड के नाम पर जिनके साथ उन्हें लगाव था, उनका नाम भी अरविन्द एक्रोयड घोष हो गया था। वह अधिकार पूर्वक इंग्लिश, फ्रेंच, जर्मन, इटेलियन, ग्रीक, लेटिन आदि भाषायें बोलते थे और ग्रीक लेटिन व इंग्लिश में श्रेष्ठ कविताएं करते थे। योरोपीय साहित्य, कला व विज्ञान, पाश्चात्य संस्कृति व सभ्यता की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों का उन्हें अच्छा ज्ञान था और अपने पुत्र की इस अंगरेजियत पर उनके पिता डॉ० कृष्णधन घोष को अभिमान था। उनकी यह आकांक्षा थी कि मेरा पुत्र पूरा अंग्रेज साहब बने और इसी लिए उन्होंने श्री अरविंद को १८७८ में जबकि वह केवल छः वर्ष के ही थे दार्जिलिंग के कॉन्वेन्ट स्कूल में प्रविष्ट करा दिया, जिस में केवल अंग्रेज और योरोपीय बच्चे ही पढ़ते थे। दो साल के बाद उन्हें इंग्लैंड ले जाया गया और वहां मिस्टर व मिसिज़ विलियम ड्रिवेट की देख रेख में विशेष रूप से यह कह कर रखा गया कि श्री अरविंद पर भारतीय संस्कृति व सभ्यता की छाया न पड़ने पाए और उन्हें भारतीयों से मिलने जुलने न दिया जाये। सेण्ट पाल्स स्कूल लन्दन तथा किंग्स कालेज केम्ब्रिज में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। पढ़ने में श्री अरविंद कुशाग्र बुद्धि थे और सदैव अच्छे नम्बर लेकर उत्तीर्ण हुए। उन्हें स्कॉलरशिप भी मिलती रही। परमात्मा की लीला बड़ी विचित्र होती है। डॉ० कृष्णधन घोष के न चाहने पर भी श्री अरविंद को भारतीयता की हवा लग ही गई। १८९१ में उन्हें केम्ब्रिज की इण्डियन मजलिस का मन्त्री चुना गया और इन्हीं दिनों उन का सम्पर्क एक गुप्त संस्था "लोटस एण्ड डेगर" से हुआ जिस का उद्देश्य था भारत की पूर्ण स्वाधीनता। डॉ० कृष्णधन घोष की यह आकांक्षा थी कि मेरा पुत्र एक आई. सी. एस. ऑफीसर बने। श्री अरविंद उक्त प्रतियोगिता में बैठ भी गये, लेकिन बिना किसी तैयारी के। भारत को पराधीन बना कर रखने वाली अंग्रेजी सरकार की मशीनरी का यन्त्र, श्री अरविंद नहीं बनना चाहते थे। बिना किसी तैयारी के और बिना रुचि के बैठने पर भी श्री अरविंद के लिखने की परीक्षा में बहुत अच्छे नम्बर आये। उन से घुड़सवारी की परीक्षा देने के लिये कहा गया। श्री अरविंद ने इस की कोई तैयारी नहीं की और जान बूझ कर असफल हो गये। लिखित परीक्षा में बहुत अच्छे नम्बर होने के कारण उन्हें दुबारा घुड़सवारी की परीक्षा के लिये अवसर दिया गया। लेकिन जिस दिन यह परीक्षा होनी थी, वह घर में बैठ कर ताश खेलते रहे। अंग्रेजी शासन का पिट्ठू न बन कर अरविंद ने भारतीय स्वतन्त्रता का एक सिपाही बनना स्वीकार किया। इसी लिये १८९३ में भारत आते ही वह बड़ोदा के महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़ के आग्रह पर बड़ोदा में प्रोफेसर ऑफ इंगलिश के स्थान पर चले गये। बड़ोदा में उन्होंने बंगाली, संस्कृत, मराठी, गुजराती भाषाओं को सीखा। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता, संस्कृत के प्राचीन साहित्य का अध्ययन

और मनन किया । यहां रह कर उन्होंने भारतीय संस्कृति व सभ्यता, अध्यात्म योग व दर्शन को समझने का प्रयास किया । भारतीय स्वाधीनता के संग्राम को जागृत रखने के लिये और नवयुवकों में प्राण फूंकने के लिये उन्होंने न केवल देशभक्तों और क्रान्तिकारियों की हर तरह से सहायता की अपितु पत्र पत्रिकाओं में लेख भी लिखे । पाश्चात्य संस्कृति, योरोपीय सभ्यता और अंगरेजियत में रंगे हुए श्री अरविंद शनैः शनैः भारतीयता के मानसरोवर में ऐसे डूबे कि वह तन मन से पूर्ण भारतीय हो गये, भारतीय वेशभूषा पहनने लगे और भारतीय ढंग से रहने लगे । १९०१ में उनका विवाह कुमारी मृणालिनी देवी के साथ हुआ । लेकिन उनका यह विवाहित जीवन केवल नौ साल ही चला क्योंकि १९१० में वह पाण्डीचेरी चले गये । स्वामी रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की जीवनगाथा से सर्वप्रथम श्री अरविंद को आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त हुई और १९०४ में आध्यात्मिक चिन्तन व प्राणायाम के साथ उन्होंने अपनी साधना प्रारम्भ की। स्वामी ब्रह्मानन्द के एक शिष्य ने उन्हें प्राणायाम के विषय में विशेष बातें बताईं । १९०७ में ग्वालियर के योगी श्री विष्णु भास्कर लेले से भी उन्हें योग के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त हुआ । लेकिन "महा-शक्ति" ही उनकी वास्तविक "पथ प्रदर्शिका और गुरु थी " नवयुवक अरविंद भारत की पूर्ण स्वाधीनता चाहते थे । उनका झुकाव गर्मदल की ओर था । वह लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के अधिक समीप थे । भारत के स्वाधीनता संग्राम में वह अच्छी तरह भाग ले सकें इसलिये वह १९०६ में बड़ौदा से कलकत्ता चले गये । बड़ौदा में उन्हें ७५० रुपये मिलते थे और कलकत्ता में केवल १५० रुपये मिलने वाले थे । इसके अतिरिक्त बड़ौदा के महाराजा ने भी उनको बड़ौदा से न जाने का विशेष आग्रह किया । किन्तु कलकत्ता में रह कर उन्होंने स्वाधीनता के युद्ध को चलाना उचित समझा और अपनी आर्थिक कठिनाइयों की चिन्ता न करते हुए वह वहां आ गये । १९०६ में होने वाली सूरत कांग्रेस में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और श्री अरविंद ने गर्मदल का नेतृत्व किया और भारतीय नवयुवकों के हृदय सम्राट बन गये । इन कार्यों से अंग्रेज सरकार श्री अरविंद के पीछे पड़ गयी । सी. आई. डी. के आदमी हर समय उनका पीछा करने लगे और उनकी प्रत्येक गतिविधि पर आंख रखी जाने



लगी। इन्हीं दिनों लोकमान्य तिलक को बन्दी बना कर बर्मा भेज दिया गया। मई १९०८ में श्री अरविंद को भी कारागार में डाल दिया गया और अलीपुर बम केस में उन्हें भी अभियुक्त बनाया गया। परन्तु अंग्रेज सरकार लाख प्रयत्न करने पर भी उनके विरुद्ध प्रमाण एकत्रित न कर सकी। विवश होकर अप्रैल १९०९ में उन्हें कारागार से सरकार ने मुक्त किया। अपने एक वर्ष के कारागार जीवन को श्री अरविंद आश्रमवास कहते थे। जेल के दिनों में उन्हें अनेक आध्यात्मिक अनुभव हुये। उन्हें सर्वत्र "श्रीकृष्ण" दिखाई देते थे। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द की आत्मा की आवाज़ भी इन्हीं दिनों सुनी। कारागार से मुक्त होने के बाद उन्होंने भविष्य में केवल अध्यात्म व योगसाधना में ही अपना जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। ३० मई १९०९ को उत्तरपाड़ा में उन्होंने अपने भाषण में जब यह कहा कि वह भविष्य में आध्यात्मिक साधना करना चाहते हैं, तो कुछ व्यक्तियों और समाचारपत्रों ने उनका परिहास करते हुए व्यंग कसे। किन्तु श्री अरविंद के हृदय में आध्यात्मिक ज्योति प्रज्ज्वलित हो चुकी थी। उनकी आन्तरिक प्रेरणा तीव्र होती चली गई और फरवरी १९१० में वह सब कुछ त्याग कर फ्रैंच कालोनी चन्द्रनगर चले गये और वहां से ४ अप्रैल १९१० को वह पाण्डीचेरी पहुंचे। पाण्डीचेरी श्री अरविंद की आध्यात्मिक साधना की योगभूमि बन गई और चालीस साल तक वह वहां रहे। लाला लाजपतराय श्री सी. आर. दास, गुरुवर रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि ने कई बार यह प्रयास किया कि वह पाण्डीचरी से भारत वापिस आ जायें। महात्मा गान्धी जी ने भी अपने सुपुत्र श्री देवदास गान्धी को विशेष रूप से उनके पास भेजकर अनुरोध किया था कि वह आ कर कांग्रेस की गद्दी को सुशोभित करें। लोकमान्य तिलक ने भी उन से बहुत आग्रह किया कि वह पूना में "स्वराज्य प्रेस" का काम हाथ में लेकर भारत के स्वाधीनता संग्राम में पुनः सहयोग दें। परन्तु श्री अरविंद आध्यात्मिक साधना और योग में इतने लवलीन हो चुके थे कि उन्होंने कहीं भी जाना उचित नहीं समझा। १९१० से लेकर १९१४ तक श्री अरविंद को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। यहां तक कि उनके निवास व भोजन आदि का भी कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं था। पन्द्रह अगस्त १९१४ को उन्होंने "आर्य" पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया और इसके माध्यम से अपने आध्यात्मिक विचार तथा वेद, उपनिषद्, गीता आदि की समालोचनायें प्रस्तुत करने लगे। इन्हीं दिनों देश विदेश के अनेक प्रमुख सज्जनों ने भी उन्हें सहयोग दिया। इनमें श्री पॉल रिचर्ड व श्रीमती मीरा रिचर्ड प्रमुख थे। श्रीमती मीरा रिचर्ड ने, जिन्हें माता जी कहा जाता है, पाण्डीचेरी में अरविंद आश्रम की समुचित व्यवस्था की और सुनियोजित ढग से उसका प्रबन्ध किया। २४ नवम्बर १९२६ के पश्चात् तो श्री अरविंद का वाह्य संसार से बिल्कुल ही सम्बन्ध टूट गया। इसके अनन्तर वह वर्ष में

केवल चार दिन ही जनता को दर्शन देते थे, और महासमाधि में जाने से दस दिन पहले २४ नवम्बर १९५० को उन्होंने अन्तिम दर्शन दिये थे।

योगीराज श्री अरविंद प्रकाण्ड विद्वान अनेक शास्त्रों व अनेक भाषाओं को जानने वाले थे। उन्हें इंग्लिश, फ्रेंच, जर्मन, इटेलियन, ग्रीक व लेटिन भाषाओं पर अधिकार था। इंग्लिश, ग्रीक और लेटिन भाषाओं में तो वह उच्च श्रेणी की कविताएं करते थे। साहित्य, राजनीति, आध्यात्मिकता, दर्शन, संस्कृति, योग, समाजशास्त्र आदि विषयों पर उन्होंने जो लिखा है, वह अद्वितीय है। वेद, उपनिषद् रामायण, महाभारत गीता और संस्कृत के प्राचीन साहित्य पर की गई उनकी समालोचनायें और व्याख्यायें उनके अगाध पाण्डित्य एव विद्वत्ता का परिचय देती हैं। भारतीय स्वाधीनता के युद्ध में दिया हुआ उनका योगदान महत्वपूर्ण व प्रशंमनीय है। भारत उनके लिये केवल नदी, नालों, पर्वतों, घाटियों, खेतों और मैदानों का समूह न होकर एक जीती जागती सचेतन भारत माता थी। इक्कीस वर्ष की आयु तक श्री अरविंद ने योरोपीय साहित्य, कला, संस्कृति और सभ्यता, विज्ञान की नई खोजों तथा नवीन वैज्ञानिक विचारधारा को भली प्रकार हृदयंगम कर लिया था। उसी पृष्ठभूमि में उन्होंने भारतीय संस्कृति सभ्यता व अध्यात्म तथा योग का अध्ययन एव मनन किया। उन्होंने भारतीय अध्यात्म व योग को नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण और विकासवाद के सिद्धान्तों के अनुकूल बना कर संसार के सामने इस ढंग से प्रस्तुत किया, जिस से कि वह सबकी समझ में सरलता से आ सके। उन्होंने स्वयं अपना मार्ग बनाया, आध्यात्मिक अनुभव किये और उन सब को "लाइफ डिवाइन", "सिन्थेसिस ऑफ योग" जैसी पुस्तकों के माध्यम से जनता के सामने रखा। श्री अरविन्द से पहले योग और वेदान्त के क्षेत्र में अनेक मत थे। महर्षि पातञ्जलि ने अष्टांग योग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा व समाधि की विस्तृत व्याख्या की थी। हठयोग, राजयोग, कर्मयोग, भक्ति-योग, ज्ञानयोग आदि प्रचलित थे। इसी प्रकार वेदान्त के सम्बन्ध में भी शंकराचार्य रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य, माधवाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि विद्वानों व पण्डितों के अलग अलग विचार थे। योगीराज श्री अरविंद ने इन सब का समन्वय करके योग की एक ऐसी विचारधारा प्रस्तुत की जो पूर्व व पश्चिम, विज्ञान और धर्म, भौतिकता, और आध्यात्मिकता सभी के अनुकूल थी। उनके पत्रों लेखों और भाषणों में अगाध ज्ञान व अनुभवों का भण्डार भरा हुआ है।

योगीराज अरविंद की आध्यात्मिक विचारधारा, विकासवाद के सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान की नई खोजों, और आविष्कारों के अनुकूल हैं। वह आधुनिक मनुष्य को सन्तुष्ट करती हैं जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रत्येक वस्तु को देखता है। श्री अरविंद मुक्ति या मोक्ष की बात कह कर संसार से कहीं दूर भागने के लिये नहीं कहते,

अपितु अपने इसी जीवन को ही दैवी गुणों से ओत-प्रोत करने पर बल देते हैं। उनके अनुसार विकास की धारायें मनुष्य को अतिमानवता की ओर ले जा रही हैं। पत्थर चट्टानों से पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों और मनुष्यों की ओर चेतना की धारा ने विकास किया है। किन्तु यहीं पर अन्त नहीं है। भविष्य में मानवता से अतिमानवता की ओर अभी चेतना ने विकास करना है। कोई चाहे या न चाहे विकास की धारायें अवश्य ही उसे अतिमानवता की ओर ले जायेंगी। परन्तु मनुष्य बुद्धियुक्त प्राणी है, यदि वह चाहे तो अपनी बुद्धि का सदुपयोग करके विकास की इन धाराओं की गति तीव्र कर सकता है। शास्त्रों का ज्ञान, साधक का उत्साह, गुरु और काल विकास धाराओं की गति तीव्र करने में और साधना में आवश्यक होते हैं। आत्म-समर्पण और प्रभुकृपा इसमें सहायक होते हैं।

योगीराज श्री अरविंद ने अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोषों की बड़ी मनोरम और वैज्ञानिक ढंग से—आधुनिक ढंग से—व्याख्या की है। आधुनिक काल में वह भारत की महान विभूति थे। भारतीय स्वाधीनता संग्राम और आध्यात्मिक साधना व योग के सम्बन्ध में उन्होंने जो कार्य किया वह प्रशंसनीय है और युगों तक आने वाली पीढ़ियों को प्रकाश देता रहेगा।



हस्ताक्षर नए-नए

धर्मवीर



एक अंत--अनिर्णीत

बड़े-बड़े पहाड़ों पर बिछी चक्करदार सड़कों पर से होती हुई बस एक छोटे से नाले को पार करके अड्डे में आकर थम गई थी। सांझ घिर आई थी। मौसम में गुलाबी जाड़ा अपनी मस्ती बिखेर रहा था। रमाकांत का मन कुछ तो गुलाबी जाड़े को महसूसने का यत्न कर रहा था और कुछ इस अपरिचित धरती में परिचय सूत्र ढूंढने का। चारों ओर फैले पहाड़ों पर से होती हुई उस की दृष्टि दूर नीचे घाटी में बहते जल पर जाकर टिक गई थी।

"क्या आप ही बाबू रमाकांत हैं? आप ही नये इंसपैक्टर के पद पर काम करने यहां आये हैं न?" प्रश्नों की इस बौछार ने उस को चौंका दिया था। फुर्ती से उस की नजरें सामने खड़े दो व्यक्तियों पर फिसलने लगी थी।

"हां! मैं ही रमाकांत हूं! आप का परिचय?" उन दोनों ने प्रश्न का उत्तर देना उचित नहीं समझा, शायद। एक ने उस का बिस्तर और दूसरे ने उसका अटैची उठाते हुए कहा—"आइए!"

रमाकांम के लिए उन दोनों के साथ चलने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रह गया था। वह धीरे-धीरे उनके पीछे हो लिया। वह प्रयत्न कर रहा था कि उन की तेजी से तालमेल स्थापित कर सके, परन्तु हर बार वह पिछड़ जाता था।

उन दोनों के पीछे चलते हुए वह जिस मकान में पहुंचा वह दो कमरों और एक रसोई पर आधारित था। कमरों के पीछे आंगन खुला हुआ था जिस में शहतूत का एक अकेला पेड़ मकान के अकेलेपन की कहानी सुनाने को खड़ा था। "अकेला

मकान, अकेला शहतूत और अकेला मैं !" रमाकांत को यह सोचते हुए अजीब सा लगा था। उसे मकान के आस-पास के विषय में जानकारी देने के बाद वे दोनों वापस कमरे में लौट आये थे। उन का परिचय प्राप्त न करना रमाकांत को अशिष्टता लगी।

"आप ने अभी तक अपना परिचय नहीं दिया ?"

"जी मैं गुजरू आप के दफ्तर का चपड़ासी और यह हमारे बड़े-बाबू शर्मा जी।"

उन में से जो बूढ़ा था परिचय देने का कर्त्तव्य उसने निभाया था।

कुछ देर इधर-उधर की बातें करने तथा उसके खाने-पीने का बन्दोबस्त करने की बात कह कर वे दोनों चले गए। वह गली में जाते उन दो सायों को तब तक देखता रहा जब तक उन की लालटेन का प्रकाश उन्हें अपने घेरे में लिए हुए हिलता दिखाई देता रहा। वह कमरे में लौट आया था।

रात यौवन पर आ चुकी थी। परन्तु चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था कमरे में लैम्प टिमटिमा रहा था। गली में कभी कभार किसी के चलने की आहट गूंज जाती थी। रमाकांत को नींद नहीं आ रही थी। वह बिस्तर पर करवटें बदल रहा था। उसे लग रहा था कि उस की नींद तो उसके अपने शहर में ही छूट गई है। कभी आंखें बन्द कर वह अपने घर पहुंच जाता। उसे रमण की याद आ रही थी, जो उसे आती बार साथ चलने के लिये कह रहा था। लाख मनाने पर भी वह सिसकियां भरता हुआ कह रहा था, 'मैं भी डैडी के साथ जाऊंगा।' गली में दौड़ते हुये जानवरों ने उसे चौंका दिया। दरवाजा खोल वह बाहर की ओर देखने लगा। उस का मन टहलने को हो रहा था। वह गली में निकल पड़ा। उस सन्नाटे में टहलते हुए वह एक चौराहे पर पहुंचा। यहां एक बड़ा सा पीपल था। पेड़ के नीचे बैठने के लिये एक पक्का चबूतरा भी था जो पत्थर लगा कर बनाया गया था। उस का मन वहां पर कुछ देर बैठने को हुआ और वह वहीं पर बैठ गया। वहां बैठे-बैठे वह अपने विचारों में खो गया। दूर से किसी की बांसुरी की आवाज़ उसके कानों में मिश्री घोल रही थी कि अचानक किसी ने उसका स्वप्न तोड़ डाला। उसने देखा एक दर्मियाने कद का आदमी जिसने खद्दर का पायजामा और कमीज पहनी थी और जिस के दायें हाथ में एक मोटी सी लाठी थी ज़ोर-ज़ोर से अकेला ही भाषण करता चला आ रहा था। वह आकर कुछ देर के लिये वहां रुका और जल्दी से दायें-बायें देखता सामने वाली दुकान के पास एक बड़े से पत्थर पर चढ़ गया। वह कह रहा था—"यही वह लोग हैं जो गरीबों का खून चूस रहे हैं। यह देश के गद्दार हैं और यह पुन्नू शाह जो मेरे

घर को बरबाद करने पर तुला है ,चाहता है कि यह चाबियों का गुच्छा मेरी मौत के बाद वह सम्भाल ले। हरगिज़ नहीं, हरगिज़ नहीं। ऐसा कभी नहीं हो सकता।" वह जल्दी-जल्दी पत्थर से नीचे उतर कर भागने की तैयारी करने लगा था कि उस की नज़र पीपल के साये में बैठे हुये रमाकांत पर पड़ी जो उस का भाषण सुन रहा था। उसने अपनी लाठी चबूतरे पर मारते हुए पूछा—"कौन हो तुम ?" रमाकांत मूक बना उसके चेहरे की ओर देखे जा रहा था। उसने एक बार फिर ज़ोर से अपनी लाठी चबूतरे पर मारते हुए पूछा - कौन हो तुम ? कहां से आये हो ?" रमाकांत का मन उस सन्नाटे में भी उस से मज़ाक करने को हुआ। वह बोला—"जी परदेसी हूं। शहर से आया हूं।" उसने तत्काल एक और प्रश्न पूछा—"रोटी कहां खाई ?" रमाकांत ने फिर मुस्कराते हुए कहा—"जी मैं यहां पर काफी देर से पहुंचा था। सामान छोड़ कर जब बाजार रोटी खाने पहुंचा तो ढाबे बन्द हो चुके थे।" यह सुन कर वह तुरन्त बोला—"इस का मतलब तुम हमारे कस्बे की नाक काटने आये हो कल जब तुम अपने शहर लौटोगे तो वहां जाकर कहोगे कि मसू के गांव गया था। रात भूखे ही काटनी पड़ी। उठो चलो मेरे साथ ! मैंने मक्की की रोटी और साग बनाया है। दोनों मिल कर खायेंगे।" रमाकांत के लाख इन्कार करने पर भी वह न माना। आखिर रमाकांत को उसके साथ जाना ही पड़ा। वह उसे एक टूटे हुए मकान में ले गया यहां दो ही कमरे थे एक में वह रोटी पकाता था। दूसरे में सोता था। जल्दी ही उसने दो पलेटें लीं और उन में कुछ रोटियां और साग डाल कर रमाकांत के आगे रख दिया। उसके बाद अपने लिये भी दो मक्की की रोटियां और साग दूसरी पलेट में डाला और खाने लगा। इसके साथ-साथ वह छोटा-मोटा भाषण भी करता जा रहा था—"यह पुन्नू शाह का घर नहीं कि किसी को रोटी के.......... यह मसू का घर है।" रोटी खाता हुआ रमाकांत कभी उसके चेहरे की तरफ देखता था और कभी छत की ओर। उसने पूछा—"साहब आप की बीवी कहां है ?" उसने फिर पास पड़ी लाठी उठाई। जमीन पर पटकते हुए कहा—"मेरी बीवी ! कौन बीवी ? किस की बीवी ? वह इस घर में कभी पांव नहीं रख सकती।" उस का भाषण फिर पहले की तरह शुरु हो गया था। भाषण करते-करते उसकी दृष्टि रमाकांत के चेहरे पर पड़ी, जिस की आंखें अब नींद से बोझल हो रही थीं, वह बोला "लगता है साहब ! आप को नींद आ रही है। बिस्तर पड़ा है, वहां सो जाइये।" रमाकांत ने उठते हुए बताया कि उसने अपने कमरे के किवाड़ भी अच्छी तरह बन्द नहीं किये हैं। इस लिये उसे वापस जाना ही होगा। मसू उसे फिर उसी चौराहे पर छोड़ कर भाषण करता हुआ चौराहे से ऊपर की ओर निकल गया। उसने यह भी नहीं पूछा कि वह परदेसी है तो उस का कमरा कहां से आया ? रमाकांत टहलता हुआ अपने घर पहुंचा तो बिस्तर पर लेटते ही उसे गहरी नींद आ

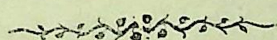
गई थी। वह अभी सो कर उठा ही था कि रात वाले दोनों व्यक्ति उसे लेने आ पहुंचे थे। वह जल्दी से तैयार होकर उनके साथ घर से निकल पड़ा।

शाम को जब रमाकांत वापस लौट रहा था तो उसी चौराहे पर उस की भेंट मसू से हो गई जो अब भी भाषण दे रहा था। रमाकांत पर नजर पड़ते ही उसने अपना भाषण बन्द कर दिया और उस का हाल पूछने लगा। वह उसके साथ कितनी देर तक बातें करता रहा, रमाकांत को ज्ञात नहीं। मसू अब हर रोज उसके घर आता और उसे नये-नये भाषण सुनाता। एक दिन जब उसे पता चला कि रमाकांत उसके गांव में इन्सपैकटर बन कर आया है तो वह बहुत खुश हुआ। अब वह आती बार कभी-कभी अपने साथ कुछ पहाड़ी फल भी ले आता। रमाकांत के लाख मना करने पर भी वह उन्हें वहीं छोड़ कर चला जाता। एक दिन जब रमाकांत दफ्तर से लौटा तो मसू ने देखा उसके हाथ में कुछ कागज थे। वह जल्दी से पास आकर बोला—"साहब यह क्या है?" रमाकांत ने एक ठंडी आह भर कर उत्तर दिया—"यह मेरा ट्रांस्फर आर्डर है।" मसू यह सुन कर भौंचक्का सा रह गया। वह रमाकांत के साथ उसके घर चला आया और काफी देर तक रमाकांत से बातें करता रहा। कभी-कभी बोल उठता—"इन्सपैक्टर साहब इस बस्ती में आप ही मुझे एक ऐसे इन्सान नजर आये थे जिसमें इन्सानियत नजर आती थी। बाकी सब पागल हैं। आप मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनते तो थे।" इतना कहते-कहते उसकी आवाज रुंध गई। वह थोड़ी देर बाद फिर अपनी आवाज साफ करते हुए बोला—"आप इतना ही प्यार देने आये थे?" अब उस की आंखों में आंसू झलकते दिखाई दे रहे थे। रमाकांत ने उसे काफी समझाया कि वह उस से मिलने फिर भी आया करेगा।

रमाकांत बस में बैठ चुका था बस के बाहर मसू खड़ा था जो उस से पूछ रहा था—"साहब अब कब आयेंगे। आपका मसू इन्तजार करता रहेगा।" ड्राइवर ने हार्न बजाया। बस धीरे धीरे रेंगने लग गई। कुछ ही देर में बस हवा से बातें करने लगी। वह रोता हुआ पीछे से हाथ हिलाये जा रहा था।

उस पहाड़ी कस्बे से आये हुये रमाकांत को दो अढ़ाई वर्ष हो चुके थे। रमाकांत का दिल कभी-कभार मसू को देखने के लिये व्याकुल हो उठता। लेकिन उसके पास इतना समय ही कहां था? एक दिन रमाकांत को मसू के गांव जाना पड़ा। वहां पहुंच कर उसने जल्दी से अपना काम समाप्त किया और मसू के घर पहुंचा तो उसने देखा वहां कोई भी नहीं था। सारा मकान गिर चुका था। वह वापिस चौराहे पर पहुंचा यहां मसू से पहली बार उस की भेंट हुई थी। उसने एक दुकानदार से मसू के बारे में पूछा, तो वह पहले तो कुछ देर चुप रहा फिर बड़े दुखी स्वर में

बोला—"क्या सुनायें साहब—मसू बीवी के भाग जाने के बाद पागलों की तरह उसे ढूंढता हुआ सचमुच ही पागल हो गया था। कुछ देर बाद जब उसे पता चला कि वह मायके चली गई है तो उसने उसे न लाने की सौगन्ध खाई थी। लेकिन मौत के पास आते ही, कुछ दिन पहले, वह ठीक हो गया। अब वह बातें भी बहुत कम करता था। एक दिन अपनी पत्नी की बात चलते ही वह ससुराल से उसे लाने को तैयार हो गया। शाम पड़ते ही वह उसे लेने चल पड़ा। सर्दियों के दिन थे। बादल गरज रहे थे वह बीवी को ससुराल लेने जा रहा था कि रास्ते में सड़क टूटने पर एक ढलान पर गिर पड़ा यहां से रेंगते-रेंगते वह एक पत्थर से जा टकराया। जिस से उसके सिर को काफी चोट लगी और खून बहने लगा। दूसरे दिन एक आदमी ने सुनाया कि मसू पहाड़ी से गिर कर मर चुका है। जब हम लेने पहुंचे तो देखा कि पत्थर से टकरा कर उस का शरीर क्षत-विक्षत हो चुका है। उस का चाबियों का गुच्छा उसके हाथ से फिसल कर दूर छिटका पड़ा था। दायें हाथ में वह लाठी अभी तक पकड़े हुए था। ऐसा लगता था कि..........." रमाकांत कानों पर हाथ रखते हुए बोला—"बस-बस मेरे कान फट जायेंगे मैं इस से आगे कुछ नहीं सुन सकूंगा।" सारी रात मसू की तस्वीर उस की आंखों के आगे नाचती रही। मसू के शब्द बार-बार कानों में गूंज रहे थे—"आप इतना ही प्यार देने आये थे।" मसू उसकी चेतना पर छा गया था। अगले दिन जब वह अड्डे पर आया तो उसे कोई भी छोड़ने नहीं आया था। आज बस में बैठ जाने पर उस से कोई भी बातें नहीं कर रहा था। बस के चलने पर किसी ने पीछे से हाथ नहीं हिलाया था। पहाड़ों की गोद में बसी हुई आबादी जो पहली बार प्राकृतिक सौंदर्य का भण्डार लगी थी। उसे घूरते हुए मानों पूछ रही थी—"तुम मसू से मिलने क्यों नहीं आये...... !"



डायरी के पृष्ठ

※ पांच जनवरी '७४ को आमन्त्रित नागरिकों के मनोरंजनार्थ स्थानीय गुलाब भवन जम्मू में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ की गजलें और नृत्य-गीत इस कार्यक्रम के मुख्य आकर्षण थे। कार्यक्रम दर्शकों से भूरि-भूरि प्रशसा प्राप्त करने में सफल रहा।

※ अकादमी के विधान ने प्रदेश के सुप्रसिद्ध कलाकारों एवं विद्वानों को पुरस्कारों से सम्मानित करने की जिम्मेदारी अकादमी के अधिकारियों पर डाली है। स्वाधीनता के रजत जयन्ती वर्ष को मनाने के लिए जहां एक ओर अकादमी ने सांस्कृतिक कार्यक्रमों एवं कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया था वहीं इस प्रदेश के विभिन्न कलाकारों एवं विद्वानों को सम्मानित करने का भी निश्चय किया गया। इस निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए एक समिति का गठन किया गया जिसने निम्नलिखित कलाकारों एवं विद्वानों को सम्मानित करने की सिफारिश की :-

फैलोशिप्स सर्व श्री सैयद मुबारक शाह गीलानी, प्रोफैसर गौरी शंकर, प्रोफैसर जय लाल कौल तथा लक्ष्मण जू रैणा।

रोब ऑफ ऑनर सर्वश्री मौलाना कामगार किश्तवाड़ी, साईं फख़्र-उद्-दीन संसार चन्द शर्मा, मीर गुलाम रसूल नाज़की, मिर्जा गुलाम हसन बेग 'आरिफ', शहजोर कश्मीरी, रामनाथ शास्त्री, मुहम्मद उल्लाह तिब्बत वक्काल, दीनू भाई पन्त, सेवा सिंह, मुहम्मद अमीन कामिल, अब्दुल रहमान 'राही', प्राण किशोर, ताशी रबगियास, मुहम्मद सुब्हान भगत, वेदपाल 'दीप', शिव कुमार शर्मा तथा सुश्री राज बेगम।

इन सब कलाकारों एवं विद्वानों को १६ फरवरी ७४ को अकादमी के प्रधान सैयद मीर कासिम ने अपने हाथों से पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

इसी अवसर पर कश्मीर की प्रसिद्ध गायिका श्रीमती राज बेगम तथा जम्मू के सुप्रसिद्ध संतूर-वादक श्री शिव कुमार शर्मा ने अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन भी किया।

* १७ फरवरी ७४ को गुलाब भवन में अकादमी द्वारा सम्मानित किए गए सज्जनों के अभिनन्दनार्थ जल-पान का आयोजन किया गया। इसी अवसर पर जम्मू कश्मीर तथा लद्दाख के लोक-गीतों, लोक-नृत्यों तथा सुगम संगीत पर आधारित एक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया।

* १८ फरवरी ७४ को गुलाब भवन में ही एक मिले-जुले मुशायरे का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता गुलाम महीउद्दीन हाजनी ने की। इस कवि-सम्मेलन की कार्यवाही का संचालन स्वयं अकादमी सचिव श्री मुहम्मद यूसुफ टेंग ने किया।

* जम्मू में रंगमंच की परम्परा अभी पूर्णरूपेण परिपक्वता को प्राप्त नहीं हुई। ऐसे में २४ मार्च ७४ को पहली बार जम्मू के नाटक-प्रेमियों को लोक-मंच की शैली पर खेला गया सुश्री शान्ता गान्धी के गुजराती नाटक 'जसमा' का डोगरी में मंचन देखने को मिला। गुलाब भवन के रंगमंच का इस नाटक के निर्देशक तथा डोगरी रूपांतरकार श्री कविरत्न ने जिस रूप में उपयोग किया वह उनकी सशक्त प्रतिभा का प्रमाण है। नृत्य, संगीत, अभिनय एवं परिपुष्ट संवादयुक्त इस नाटक ने दर्शकों पर मानो जादू कर दिया था। नाटक का सुष्ठु प्रदर्शन दर्शकों से प्रशंसा अर्जित करने में सफल रहा।

* आजकल सारे देश में सूफी संत शेख फरीद के जीवन एवं दर्शन पर प्रकाश डालने के लिए अनेक आयोजन किए जा रहे हैं। इसी सन्दर्भ में अकादमी ने भी २९ मार्च ७४ को गांधी भवन में शेख फ़रीद की स्मृति में एक मिले जुले कवि-सम्मेलन का आयोजन किया। इसमें हिन्दी, उर्दू, डोगरी तथा पंजाबी के कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से बाबा फ़रीद के जीवन एवं दर्शन पर प्रकाश डाला। इस कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता जम्मू विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री जे० डी० शर्मा ने की।



आपकी बात

दिसम्बर 73 अंक—कुछ प्रतिक्रियाएं

⁂ छोटे आकार से इस की सुन्दरता में वृद्धि हुई है। रचनाओं का चयन सम्पादकीय जागरूकता का परिचय प्रस्तुत करता है। अपनी बात विचारोत्तेजक है। कविता-कामिनी का विश्राम पाना असम्भव है। किसी भी वस्तु का स्थिर रहना प्रकृति के नियमों का विरोध होगा। चलता पानी हमेशा साफ होता है।

—पुष्प सराफ (पत्रकार) ए—२१, डिफैंस कालोनी, नई दिल्ली –३

⁂ कविताएं कमज़ोर लगीं—पथिक की चारों तथा मानव की एक कविता छोड़ कर। श्री प्रियतम कृष्ण कौल का लेख तथा डॉ० संसार चन्द्र का व्यंग्य अच्छे रहे।

आंचलिक सांस्कृतिक जीवन पर, कला और शिल्प पर कुछ ज्यादा ही लेख दें ताकि पत्रिका को सोंधी मिट्टी की गंध की शक्ति भी मिले! उत्तरोत्तर स्तर उठे, यही सहज कामना है, औपचारिकता नहीं।

—डॉ० रमेश कुन्तलमेघ, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
गुरु नानक विश्वविद्यालय, अमृतसर।

⁂ इस अंक का सम्पादकीय पिछले तीन दशकों में हिन्दी कविता में आए अनेक मोड़ों का संक्षिप्त पर सारगर्भित लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। भद्रवाह की हिन्दु जातियों के उपनाम, अल्बम के चार पृष्ठ, वह क्षण नहीं आया, कहां सुख, नए खत पुराने खत रचनाएं सराहनीय हैं।

—प्रो० सत्य पाल शास्त्री, डिग्री कालेज, कठूआ।

⁂ शीराज़ा के नवीनतम अंक का मुखपृष्ठ अत्यत आकर्षक रहा। बधाई।

—प्रदीप मेहता, काशीपुरी, भीलवाड़ा (राज०)

※ शीराज़ा में उस क्षेत्र (जम्मू-कश्मीर) की ऐतिहासिक संस्कृति की खोज पर लेखादि प्रकाशित करें तो बहुत बड़ा काम होगा। प्रियतम कृष्ण कौल का लेख इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

— मुद्राराक्षस, ए-१५/५, राणाप्रताप बाग, दिल्ली—७

※ सामग्री विविधता लिए हुए है। हां, कश्मीरी भाषा, जीवन अथवा साहित्य एवं संस्कृति सम्बन्धी किसी भी एक लेख का न होना अखरा जरूर है। शीराज़ा में इस तरह का एक-आध लेख हर अंक में अनिवार्य रूप से रहना चाहिए।

—डॉ० शिबन कृष्ण रैणा, राजकीय कालेज, नाथद्वारा।

※ पत्रिका के फिर सम्भल जाने की आशा हो रही है। यह पहली प्रतिक्रिया है। स्तर की रक्षा आप का सर्वप्रथम प्रयास होना चाहिए। प्रदेश के लेखकों को स्थान देना एक उचित मांग हो सकती है पर 'प्रतिनिधित्व' की बात छद्म राजनीतिक नारा है। स्तर करुण हो तो अच्छे लेखक इस पत्रिका से किनारा कर लेंगे और 'प्रतिनिधि' लेखक बार-बार छपने पर भी आगे बढ़ नहीं सकेंगे।

प्रस्तुत अंक का लेख अनुभाग निश्चय ही अच्छा है। लेकिन कविता और कथा भाग काफी सुधर सकते थे।

—रतन लाल शान्त, ५५-वडीयार बाला, श्रीनगर।

※ सम्पादन कलापूर्ण है और पाठकों को एक नयी दृष्टि देता है। **मड़वाह की हिन्दु जातियों के उपनाम** एक भाषा वैज्ञानिक लेख है जो मुझे रुचिकर और खोजपूर्ण लगा। अपनी बात में कविता के मोड़......स्पष्ट हो सके हैं।

—डॉ० हरिहर प्रसाद गुप्त, १४९, त्रिवेणी मार्ग, इलाहाबाद।

※ अपने सम्पादकीय में आप ने एक सार्थक प्रश्न उठाया है। आज हर दस कवि मिलकर कविता को एक नया नाम दे डालते हैं और इस कविता के प्रवर्त्तक कवि बन कर साहित्य में अपना स्थान बनाना चाहते हैं......इस स्थिति का विरोध आवश्यक है। डॉ० परमार का लेख प्रभावित करता है। **नए खत पुराने खत** के लेखक को बधाई। **बैसाखियों वाला शहर** संवेदनाओं को अभिव्यक्त करती हुई एक पैनी कविता है।

विष्णु सक्सेना—ए० डी० ५८, एच० एम० टी० कालोनी, पिंजौर।

※ इतना सुन्दर अंक निकालने पर अभिनन्दन। पत्रिका को खोलते ही इस छोर से उस छोर तक पढ़ गया। सभी लेख पठनीय हैं। एक सुझाव है, आगामी अंकों में हास्य-व्यंग्य के प्रकाशित होने का क्रम नहीं टूटना चाहिए।

—अवतार कृष्ण राजदान, ८३, पुरुषयार, हब्बाकदल, श्रीनगर।

※ लेखों, कथा साहित्य एवं कविताओं की त्रिवेणी के माध्यम से आपने शीराज़ा के रूप को निखारा है। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप के द्वारा जम्मू-कश्मीर के उदीयमान व प्रौढ़ साहित्यकारों को समुचित प्रोत्साहन तथा प्रतिनिधित्व प्राप्त होता रहेगा। सफल और सुयोग्य सम्पादन कार्य के लिए हार्दिक बधाई।

—जगदीश प्रसाद द्विवेदी

प्रधान, भारतीय साहित्य परिषद्, जम्मू।

※ सामग्री सुन्दर, सुरुचिपूर्ण एवं पठनीय है। भद्रवाह की हिन्दु जातियों के उपनाम लेख में दार्दिक एवं अन्य पहाड़ी भाषाओं के कुछ सर्वसाधारण भाषायी तत्व देखने को मिले बड़ी प्रसन्नता हुई। पत्रिका की प्रगति एवं उन्नति के लिए शुभ कामनाएं।

डॉ० देवीदत्त शर्मा, संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

※ अब तक शीराज़ा के जो अंक देखे थे उन से यह बिल्कुल अलग बानगी लिए हुए है। आशा बन्ध गई है कि शीराज़ा हिन्दी की उच्चस्तरीय पत्रिकाओं में स्थान बना लेगी।

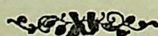
— प्रो० शम्भु नाथ शर्मा, मंत्री, डोगरा ब्राह्मण प्रतिनिधि सभा, जम्मू।

※ **अपनी बात** का शीर्षक **कविता के मोड़ अभी कितने और** इतना आकर्षक लगा कि सब से पहले उसे ही पढ़ गया। उपरोक्त शीर्षक में सारी बात कहने की क्षमता है। इतने सुन्दर और विचारोत्तेजक सम्पादकीय के लिए बधाई स्वीकारें। **डोगरी लोक गीतों में पर्व-त्योहार** तथा **नए खत पुराने खत** सुन्दर बन पड़े हैं। कविताओं का चयन परिपक्व रुचि का परिचायक है। **इतिहास के हाशिए से** तथा **बैसाखियों वाला शहर** इस अंक की विशिष्ट रचनाएं लगीं।

—रामनारायण उपाध्याय, ब्राह्मणपुरी, खण्डवा (म० प्र०)

※ डॉ० परमार का लेख कुछ जरूरत से लम्बा लगता है। **इतिहास के हाशिए से, अलबम के चार पृष्ठ, बैसाखियों वाला शहर** सुन्दर लगीं। **वह क्षण नहीं आया** सफल कहानी है। **मृत्यु बोध** आप की सम्पादन क्षमता का परिचय देती है। **अपनी बात में कविता के मोड़ कितने अभी और** सुन्दर बन पड़ा है।

—केदार नाथ कोमल, ई० ९७, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली।



पुस्तकें और पुस्तकें

'प्रिज़्मों में बटी किरणें'[1] जम्मू के नौ प्रतिनिधि हिन्दी कहानीकारों की कहानियों का संकलन है। इस भू-भाग के कहानीकारों को एक ही संकलन में प्रस्तुत करने का यह पहला प्रयास है। क्रम में सब से पहले स्थान के अधिकारी बने हैं—श्री दुर्गादत्त शास्त्री। आयु में सब से बड़े हैं शायद इसी लिए इन का रचना कौशल भी पुराने ढर्रे का है। लगता है कहानी का उद्देश्य निश्चित करने के पश्चात ही वे कहानी का ढांचा खड़ा करते हैं। "माथे की रेखायें" शीर्षक डॉ० ओम प्रकाश गुप्त की कहानी में युद्ध की विभीषिका तथा इस प्रदेश के निवासियों पर उस का प्रभाव चित्रित हैं। देश की रक्षा के प्रश्न पर हिन्दू-मुसलमान—दोनों के सोचने का स्तर किस प्रकार एक सा हो जाता है, यही इस कहानी का प्रतिपाद्य है। श्री सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् ने प्रतीकों के जंगल में घुमा कर पाठक को अपनी कहानी "तेंदुआ" में वर्तमान जीवन की घुटन के समक्ष ला खड़ा किया है तो श्री ज्योतीश्वर पथिक अपनी कहानी "एक मछली जेहलम की" के माध्यम से पाठक को कश्मीर की सैर करवाते हैं। उस कश्मीर की सैर जहां संतूर और तुमनखाड़ी का संगीत है, हाऊस-बोटों की रेल-पेल है, फूलों की क्यारियां हैं—बिखरा हुआ सौंदर्य है लेकिन साथ ही है—एक आग! यह आग विदेशी आक्रमण से भड़क उठती है और कश्मीरी युवक अपना सर्वस्व मातृभूमि पर न्यौछावर कर देते हैं। श्री निर्मल विनोदी की "एक टुकड़ा चैन" और श्री जगमोहन की "एक फैला हुआ बरगद, एक घुटी हुई सांस" आधुनिक हिन्दी कहानियों से सही पहचान कराती हैं। श्रीमती राज भल्ला की कहानी "सिकुड़े कोनों का अल्बम" में नारी जीवन की वेदना पूरी मार्मिकता के साथ चित्रित हुई है।

अन्य कहानियां भी निजी विशिष्टतायें संजोए हुए हैं। काश! पुस्तक की छपाई सुन्दर बन पड़ती।

---

1 प्रिज़्मों में बटी किरणें—
सम्पादक : जवाहर रैणा तथा अन्य
प्रकाशक : युवा हिन्दी लेखक संघ, जम्मू
मूल्य : पांच रुपये; पृष्ठ : 84

केसर के फूल[1] श्रीरैणा का कहानी संग्रह है जो हिन्दी के आंचलिक कथा साहित्य की उल्लेखनीय उपलब्धि है। 'केसर के फूल' सही अर्थों में कश्मीरी जीवन की झांकी प्रस्तुत करती है। निःसन्देह, ये कहानियां उन कसौटियों पर नहीं परखी जा सकतीं जिन पर सामान्यतः कहानी को आंका जाता है। इन में न तो घटना वैचित्र्य है, न पात्रों के नाटकीय क्रियाकलाप। आंचलिक कहानी के विषय में कहा जाता है कि इस में कोई नायक नहीं होता, वातावरण ही इस का नायक होता है—यह उक्ति श्री रैणा की इन कहानियों पर सही बैठती है। सभी कहानियां, कहानियां न होकर कश्मीरी जीवन की पारदर्शियां हैं।

यद्यपि भाषा पर आंचलिक प्रभाव आंचलिक साहित्य की विशेषता कही जाती है तथापि कतिपय भाषा प्रयोग अखरे बिना नहीं रहते—औरतें बच्चे टोकरियों में मछली पकड़ने नदी के किनारे चली गईं। (पृ० ५) इत्यादि।

अंततः कहा जा सकता है कि इन कहानियों की विशेषता है प्रभविष्णुता। सौंदर्य चाहे प्राकृतिक सुषमा का हो, चाहे विधाता द्वारा उरेहे मानवीय अंगों का, चाहे भोले भाले निष्कपट चरित्रों का, रैणा जी की लेखनी से साकार हो उठा है।

धुंधलके[2] श्री दीदारसिंह की हिन्दी कहानियों का पहला संग्रह है। इस में अठारह "कहानियां" हैं। इन सभी को 'कहानी' की संज्ञा देना कहां तक उपयुक्त है, विचारणीय है, विवादास्पद भी हो सकता है। 'सूनी-सूनी हर जगह' जैसी रचनाएं आसानी से भावप्रधान ललित निबन्धों की कोटि में रखी जा सकती हैं। वैसे लेखक का फलक बहुत व्यापक और विविधतापूर्ण है। जीवन के भौतिक अभाव, मानसिक प्रतिक्रियाओं का लेखा जोखा उन की कहानियों में प्रस्तुत है। 'मांग का सिंदूर' में नायिका की जीवेच्छा का चित्रण मार्मिक ढंग से हुआ है। दीदार सिंह की कहानियों की अनेक उक्तियां बहुत पैनी हैं। जैसे—'नम्बर नम्बर और नम्बर! क्या व्यक्तियों के भी नम्बर होते हैं! फिर नाम किस लिए हैं? ये कोई पुस्तक के पृष्ठ हैं या किसी मशीन के पुर्जे!' (पृ० १३)

सामान्य सी बात को हृदयस्पर्शी मोड़ पर ला खड़ा करना इन कहानियों की विशेषता है। 'सिस्टर' जैसी लघु रचना इस का सशक्त उदाहरण है।

दीदार सिंह की कहानियों की एक विशेषता यह भी है कि उन की नारियां परिवेश से विद्रोह नहीं कर पातीं, छटपटा कर समायोजन कर लेती हैं।

कुल मिला कर 'धुंधलके' एक प्रशंसनीय कृति है।

---

1. केसर के फूल—

लेखक : अर्जुन नाथ रैणा
प्रकाशक : ज्ञान मंदिर, नई दिल्ली
मूल्य : दस रुपये; पृष्ठ : 194

2. धुंधलके—

लेखक : दीदार सिंह
प्रकाशक : मल्होत्रा ब्रादर्ज, जम्मू
मूल्य : पांच रुपये; पृष्ठ : 170



A Publication of
J & K Academy of Art Culture & Languages. Jammu.